कङ्कालमालिनीतन्त्रम्

प्रदीप कुमार राय

प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी

तन्त्र ग्रन्थमाला नं0 24

कङ्कालमालिनीतन्त्रम्

(मूल एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवाद

प्रदीप कुमार राय

प्राच्य प्रकाशन

वाराणसी-221002

संस्करण-2010

प्रकाशक :

कुश राय

प्राच्य प्रकाशन

C 21/3-C (होटल हिन्दुस्तान इण्टरनेशनल कम्पाउण्ड)
मलदहिया, वाराणसी-221002 (भारत)

© प्रेमचन्द महताब राय शोध संस्थान
लमही, (पोस्ट-वाया सारनाथ)
वाराणसी-221007 (भारत)

मूल्य : 100.00 रुपये

मुद्रक :
गौतम प्रिण्टर्स, जगतगंज, वाराणसी-2

भूमिका

भगवती काली ही कङ्कालमालिनी हैं । कङ्कालमालिनी का अर्थ 'मुण्डमालिनी काली' है । इस ग्रन्थ के आद्यन्त पाठ करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि 'कङ्काल' शब्द के द्वारा 'वर्ण' अभिप्रेत है एवं कङ्कालमाला का अर्थ 'वर्णमाला' है, जिनके गले में वर्णमाला शोभायमान हैं, वही 'कङ्कालमालिनी' मूलाधार निवासनी कुण्डलिनी देवी हैं, जो परम सुख को प्रदान करतीं हैं तथा जो श्मशानवासिनी श्यामा जाग्रता कुण्डलिनी सुषुम्ना पथ के द्वारा भ्रमण करती हैं ।

पुस्तक के प्रथम पटल में वर्णमाला की व्याख्या की गयी है । इसलिए इस तन्त्र में 'वर्णमाला' का एक विशेष स्थान है । 'अ' से 'अः' सोलह स्वरवर्ण हैं, जिसे सत्त्वमय बताया गया है । अवशिष्ट 35 व्यञ्जनवर्णों में 'क' से 'थ' कुल 17 वर्ण को रजोगुणमय बताया गया है, तथा 'द' से 'क्ष' तक कुल 18 वर्ण समष्टि को तमोगुणमय माना गया है । सभी इक्यावन (51) वर्णमाला की एक तालिका भी दी गयी है ।

द्वितीय पटल में मन्त्रों का अर्थ,मन्त्र चैतन्य योनिमुद्रा का विवरण, मन्त्र सिद्धि के लिए योनिमुद्रा का रहस्य तथा योनि कवच का विवरण दिया गया है ।

तृतीय पटल में गुरु की पूजा-विधि, गुरु कवच एवं गुरुगीता का कथन कहा गया है ।

चतुर्थ पटल में महाकाली के मन्त्रों का महात्म्य का वर्णन किये जाने के पश्चात् एकाक्षर तथा त्र्यक्षर मन्त्रों का उद्धार किया गया है, और अन्त में महाकाली की पूजा-विधि का कथन किया गया है ।

पञ्चम पटल का दीर्घ काफी विस्तार में है । इसमें पुरश्चरण का विधान एवं उसके माहात्म्य का वर्णन किया गया है । पुरश्चरण-विधि के प्रसङ्ग में ही प्रातःकृत्य स्नान, संध्या, तर्पण, प्रभृति का उल्लेख किया गया है । गणपति, भैरव, क्षेत्रपाल

एवं इन्द्रादि देवताओं के उद्देश्य से किस प्रकार बलि प्रदान करना चाहिए, उसका विस्तार से वर्णन किया गया है । भूतशुद्धि-न्यास के अनुष्ठान के समापन, भस्म का तिलक धारण, रुद्राक्ष-धारण का विधान एवं माहात्म्य विस्तार के साथ वर्णित किया गया है । 50 वर्णों में प्रत्येक वर्ण की पूजा, ध्यान, धारण प्रभृति का उल्लेख किये जाने के बाद डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी के बीज मन्त्रों का उद्धार एवं मातृका बीज के रहस्य तथा शारदीया महापूजा तत्सम्बन्धी पुरश्चरण का विवरण विशेष उपयोगी है ।

यदि यह ग्रन्थ साधकों एवं तन्त्रजिज्ञासुओं के लिए उपयोगी बन सके तो अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे ।

प्रदीप कुमार राय

सूचीपत्र

प्रथम पटल	वर्णों का कारण-कथन	1-7
द्वितीय पटल	योनिमुद्रा कथन	8-23
तृतीय पटल	गुरुपूजन-कवच-गीतकथन	24-29
चतुर्थ पटल	महाकाली-मन्त्र-पूजा-कथन	30-42
पञ्चम पटल	पुरश्चरण-विधि-कथन	43-89

कङ्कालमालिनीतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

ॐ नमः श्रीगुरवे

भैरव्युवाच —

त्रिपुरेश महेशान पार्वतीप्राणवल्लभ ।
जगद्वन्द्य शूलपाणे वर्णानां कारणं वद ।।1।।

श्रीभैरव उवाच —

कथयामि वरारोहे वर्णानां भेदमुत्तमम् ।
न प्रकाश्यं महादेवि तव स्नेहात् सुभाषिणि ।।2।।
यज्ज्ञात्वा योगिनो यान्ति निर्गुणत्वं मम प्रिये ।
तच्छृणुष्व स्वरूपेण महायौवनगर्विते ।।3।।
शब्दब्रह्मस्वरूपन्तद् आदि-क्षान्तं जगत् प्रभुः ।
विद्युज्जिह्वा करालास्या गर्जिनी धूम्रभैरवी ।।4।।

भैरवी ने कहा — हे त्रिपुरेश, हे महेश, हे पार्वती के प्राणवल्लभ; हे जगद्वन्द्य शूलपाणि, वर्णों के कारण का वर्णन करें ।।1।।

भैरव ने कहा — हे वरारोहे, सुभाषिणि महादेवि, आपके प्रति स्नेहपरवश होकर वर्णों के उत्कृष्ट रहस्य का वर्णन कर रहा हूँ, जो (विषय, किसी के निकट) प्रकाश्य नहीं है ।।2।।

हे मेरी प्रिये, हे महायौवन के गर्व से गर्वित, जिस (विषय) को जानकर योगिगण निर्गुणत्व को प्राप्त होते हैं, उस (विषय) के स्वरूप का श्रवण करें ।।3।।

अकारादि (एवं) क्षकारान्त जो शब्द ब्रह्म-स्वरूप है, वही जगत् का प्रभु है । (अ) विद्युज्जिह्वा, (आ) करालास्या, (इ) गर्जिनी, (ई) धूम्रभैरवी ।।4।।

कालरात्रि र्विदारी च महारौद्री भयङ्करी ।
संहारिणी करालिनी ऊर्ध्वकेश्युग्रभैरवी ॥5॥

भीमाक्षी डाकिनी रुद्रडाकिनी चण्डिकेति च ।
एते वर्णाः स्वराः ज्ञेयाः कौलिनि व्यञ्जना शृणु ॥6॥

क्रोधीशो वामनश्चण्डो विकार्युन्मत्त भैरवः ।
ज्वालामुखो रक्तदंष्ट्रोऽसिताङ्गो वडवामुखः ॥7॥

विद्युन्मुखो महाज्वालः कपाली भीषणो रुरुः ।
संहारी भैरवो दण्डी बलिभुगुग्र-शूलधृक् ॥8॥

सिंहनादी कपर्दी च करालाग्निर्भयङ्करः ।
बहुरूपी महाकालो जीवात्मा क्षतजोक्षितः ॥9॥

बलभेदो रक्तश्च चण्डीशो ज्वलनध्वजः ।
वृषध्वजो व्योमवक्त्र-स्त्रैलोक्य-ग्रसनात्मकः ॥10॥

(उ) कालरात्रि, (ऊ) विदारी, (ऋ) महारौद्री, (ॠ) भयङ्करी, (ऌ) संहारिणी, (ॡ) करालिनी, (ए) ऊर्ध्वकेशी, (ऐ) उग्रभैरवी ।।5।।

(ओ) भीमाक्षी, (औ) डाकिनी, (अं) रुद्रडाकिनी, (अः) चण्डिका – इन वर्णों को स्वरवर्ण जानें । हे कौलिनी, सम्प्रति व्यञ्जनवर्णों का श्रवण करें ।।6।।

(क) क्रोधीश, (ख) वामन, (ग) चण्ड, (घ) विकारी, (ङ) उन्मत्त भैरव, (च) ज्वालामुख, (छ) रक्तदंष्ट्र, (ज) असिताङ्ग, (झ) वड़वामुख ।।7।।

(ञ) विद्यन्मुख, (ट) महाज्वाल, (ठ) कपाली, (ड) भीषण, (ढ) रुरु, (ण) संहारी, (त) भैरव, (थ) दण्डी, (द) बलिभुक् (ध) उग्रशूलधृक् ।।8।।

(न) सिंहनाद, (प) कपर्दी, (फ) करालाग्नि, (ब) भयङ्कर, (भ) बहुरूपी, (म) महाकाल, (य) जीवात्मा, (र) क्षतजोक्षित ।।9।।

(ल) बलभृद्, (व) रक्त, (श) चण्डीश, (ष) ज्वलनध्वज, (स) वृषध्वज, (ह) व्योमवक्त्र, (क्ष) त्रैलोक्यग्रसनात्म । ककारादि क्षकारान्त इन वर्णों को व्यञ्जन वर्ण जानें ।।10।।

एते च व्यञ्जना ज्ञेयाः कादि-क्षान्ताः क्रमादिताः ।
अकारादि-क्षकारान्ता वर्णास्तु शिवशक्तयः ॥11॥
पञ्चाशच्च इमे वर्णा ब्रह्मरूपाः सनातनाः ।
येषाः ज्ञानं विना वामे सिद्धिर्न स्याद् गुरुस्तनि ॥12॥
ते वर्णसागराः प्रोक्ता गुणत्रयमयाः शुभे ।
विद्युज्जिह्वामुखं कृत्वा चण्डिकान्तं नगात्मजे ॥13॥
सत्त्वगुणमया वर्णा रजोगुणमयान् शृणु ।
क्रोधीशाद्दण्डि-पर्यन्ता व्यञ्जना राजसाः स्मृताः ॥14॥
बलिभुग्वर्णमारभ्य त्रैलोक्य-ग्रसनावधि ।
ज्ञेयास्तमः स्वरूपास्ते तेभ्यो जातान् शृणु प्रिये ॥15॥
गुशब्दश्चान्धकारः स्याद्रु-शब्दस्तन्निरोधकृत् ।
अन्धकारविरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥16॥
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रकारः पापहारकः ।
उकारस्तु भवेद्विष्णु-स्त्रितयात्मा गुरुः स्वयम् ॥17॥

अकारादि क्षकारान्त वर्ण शिवशक्ति-स्वरूप है । ये पचास वर्णसमूह ही सनातन ब्रह्म-रूप में विराजमान हैं । हे वामे ! जिनके ज्ञान के बिना सिद्धि प्राप्ति सम्भव नहीं है । हे गुरुस्तनि शुभे ! इन्हें 'गुणत्रयमय वर्णसागर' कहा जाता है । 'विद्युज्जिह्वा' अर्थात् अ-कार से आरम्भ कर 'चण्डिका' अर्थात् विसर्ग पर्यन्त वर्णसमूह सत्त्वगुण युक्त हैं ।।11-13।।

हे नगात्मजे ! सम्प्रति रजोगुणयुक्त वर्णों का श्रवण करें । 'क्रोधीश' अर्थात् क-कार से आरम्भ कर 'दण्डी' अर्थात् थ-कार पर्यन्त व्यञ्जनसमूह को रजोगुणयुक्त जानें ।।14।।

'बलिभुक्' अर्थात् द-कार से आरम्भ कर त्रैलोक्य ग्रसनात्मक वर्ण क्षकार पर्यन्त जो वर्णसमूह हैं, वे तामस (तमोगुण युक्त) हैं । हे प्रिये ! उन सत्त्व प्रभृति गुणों से उत्पन्न हुए (विषयों) का श्रवण करें ।।15।।

'गुरु' शब्द का अर्थ इस प्रकार है — 'गु' शब्द के द्वारा अन्धकार को समझा जाता है एवं उसके निरोधकारी अर्थ 'रु' के द्वारा प्रकट होता है । जो (अज्ञान-रूप) अन्धकार का निरोध करते हैं, वही 'गुरु' हैं ।।16।।

'ग'-कार का अर्थ है सिद्धिदाता एवं 'र'-कार को पापहारक बताया जाता है एवं 'उ'-कार के द्वारा 'विष्णु' को समझा जाता है, अतः 'गुरु' स्वयं तीन रूप-विशिष्ट हैं ।।17।।

आदावसौ जायते च शब्दब्रह्म-सनातनः ।
वसुजिह्वा कालरात्र्या रुद्र-डाकिन्यलङ्कृता ।
विषबीजं श्रुतिमुखं ध्रुवं हालाहलं प्रिये ॥ ॐ ॥18॥
चण्डीशः क्षतजारूढो धूम्र भैरव्यलङ्कृतः ।
नादबिन्दुसमायुक्तं लक्ष्मीबीजं प्रकीर्तितम् ॥ श्रीं ॥19॥
क्रोधीशं क्षतजारूढं धूम्रभैरव्यलङ्कृतम् ।
नादबिन्दुयुतं देवि नामबीजं प्रकीर्तितम् ॥ क्रीं ॥20॥
क्रोधीशो बलभृद् बलभुग् धूम्र-भैरवीनादबिन्दुभिः ।
त्रिमूर्त्तिर्मन्मथः कामबीजं त्रैलोक्य मोहनम् ॥ क्लीं ॥21॥
क्षतजस्थो व्योमवक्त्रो धूम्र-भैरव्यलङ्कृतः ।
नादबिन्दु-सुशोभाढ्यं माया-लज्जाद्वयं स्मृतम् ॥ ह्रीं ॥22॥

'ॐ' शब्द तीनवर्णों के द्वारा गठित है — वसु-जिह्वा अकार है कालरात्रि उकार है एवं रुद्रडाकिनी अनुस्वार है । हे प्रिये ! यह शब्दब्रह्मरूपी बीजमन्त्र जगत्-प्रपञ्च के लिए विषस्वरूप है अर्थात् विष के समान माया-प्रपञ्च को नष्ट करने में समर्थ एवं श्रुति के मुखस्वरूप हैं ।।18।।

'श्रीं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — चण्डीश-शकार, क्षतज अर्थात् 'र'-कार में आरूढ़ होकर धूम्रभैरवी (अर्थात्) ई-कार के द्वारा अलङ्कृत है एवं नादविन्दु-संयुक्त यह मन्त्र लक्ष्मीदेवी के बीजमन्त्र के रूप में तान्त्रिक पण्डितों के द्वारा कीर्त्तित है ।।19।।

'क्रीं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — क्रोधीश अर्थात् क-कार, क्षतज अर्थात् 'र'-कार में आरूढ़ होरक धूम्र-भैरवी – ई-कार के द्वारा शोभित एवं नाद-बिन्दु-संयुक्त है । इसे नाम-बीज अर्थात् कालिकाबीज कहा जाता है ।।20।।

'क्लीं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — क्रोधीश अर्थात् क-कार,बलभृद् या ल-कार के साथ, धूम्रभैरवी अर्थात् ई-कार के द्वारा अलङ्कृत होकर, नादबिन्दु-संयुक्त होने पर, 'त्रिमूर्त्ति' बन जाता है । (क् ल् ई) – यह त्रिमूर्त्ति रूप कामबीज है, जो त्रैलोक्य को मुग्ध करने में समर्थ है ।।21।।

'ह्रीं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — व्योमवक्त्र अर्थात् 'ह'-कार एवं क्षतज अर्थात् 'र'-कार है । 'ह'-कार एवं 'र'-कार – ये दो वर्ण धूम्रभैरवी अर्थात् ई-कार के द्वारा शोभायमान होकर, नाद-बिन्दु से संयुक्त बनने पर 'ह्रीं' मन्त्र में परिणत हो जाता है । ये मायाबीज एवं लज्जाबीज के नाम से प्रसिद्ध है ।।22।।

व्योमास्यञ्च विदारीस्थं नादबिन्दु विराजितम् ।
कूर्चकालं क्रोधबीजं जानीहि वीरवन्दिते ॥ हूँ ॥23॥
व्योमास्यः कालरात्र्याढ्यो वर्म-बिन्द्विन्दू-संयुतः ।
कथितं वचनं बीजं कुलाचार-प्रियेऽमले ॥ हुँ ॥24॥
व्योमास्यं क्षतजारूढं डाकिन्या नादबिन्दुभिः ।
ज्योतिर्मन्त्रं समाख्यातं महापातक-नाशनम् ॥ ह्रौँ ॥25॥
नादबिन्दु-समायुक्तां समादायोग्र-भैरवीम् ।
भौतिकं वाग्भवं बीजं विद्धि सारस्वतं प्रिये ॥ ऐं ॥26॥
प्रलयाग्निर्महाजालः ख्यात अस्त्र-मनुः शिवे ।
रक्त-क्रोधीश-भीमाख्योऽङ्कुशोऽयं नादबिन्दुमान् ॥ क्रौं ॥27॥

'हूं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — व्योमास्य – 'ह'-कार एवं विदारी-ऊकार, व्योमास्य विदारीस्थ होकर अर्थात् उ-कार के ऊपर 'ह'-कार, नाद एवं बिन्दु से युक्त होने पर 'हूं' मन्त्र में परिणत हो जाता है । हे वीरवन्दिते पार्वति, यह 'हूं' मन्त्र क्रोधबीज है एवं यह काल के प्रभाव को भी विदूरित कर देता है – ऐसा जानें ।।23।।

'हुँ' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — व्योमास्य 'ह'-कार एवं कालरात्रि उकार है । व्योमास्य कालरात्रि के द्वारा भूषित होकर चन्द्रबिन्दुरूप वर्म से आच्छादित होने पर 'हुं' बीज में परिणत हो जाता है । हे कुलाचारप्रिये स्वच्छरूपिणी । इसे 'बाग्बीज' कहते हैं ।।24।।

'ह्रौं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — व्योमास्य ह्-कार, क्षतज 'र'-कार एवं डाकिनी 'औं'-कार है । 'ह्'-कार रेफ के साथ संयुक्त होकर, 'औं'-कार तथा नाद-बिन्दु के साथ (रहने पर) ज्योतिर्मन्त्र में परिणत हो जाता है, जो कि सभी प्रकार के महापातक का नाशक है ।।25।।

'ऐं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — उग्रभैरवी का अर्थ है ऐ-कार । उग्रभैरवी 'ऐ'-कार, नाद एवं बिन्दु के साथ मिलित होकर सरस्वती के बीज में परिणत हो जाता है ।।26।।

'क्रौं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है — हे शिवे, प्रलयकालीन अग्नि ज्वाला के समान भयंकर यह मन्त्र, रक्तक्रोधीश-रूप में नाद एवं बिन्दु से युक्त होकर श्यामाबीज में परिणत हो जाता है ।।27।।

द्वि-ठः शिवो वह्निजाया स्वाहा ज्वलनवल्लभा ॥ स्वाहा॥
संयुक्तं धूम्रभैरव्या रक्तस्थं बलिभोजनम् ।
नादबिन्दु समायुक्तं किङ्किणी-बीजमुत्तमम् ॥ द्रीं ॥28॥
नादबिन्दु-समायुक्तं रक्तस्थं बलिभोजनम् ।
करालास्यासनोपेतं विशिकाख्यं महामनुम् ॥ द्रां ॥29॥
विदार्या नेक्षितो गुह्यो वलिभुक् क्षतजो क्षितः ।
नादबिन्दु-समायुक्तो विज्ञेयः पिशिताशनः ॥ दूं ॥30॥
धूम्रोज्ज्वल-करालाग्नि ऊर्ध्व-केशीन्दुविन्दुभिः ।
युगान्तकारकं बीजं वीरपत्नि प्रकाशितम् ॥ फैं ॥31॥
संहार्रिण्या स्थितश्चोर्द्ध-केशिनन्तु कपर्दिनम् ।
नादबिन्दु-समायुक्तं बीजं वैतालिकं स्मृतम् ॥ पँल्ल् ॥32॥

'स्वाहा' – मन्त्र का वर्णन एवं विधि है – सुन्दर रूपमें (भली प्रकार से) मर्यादा के साथ इस मन्त्र का उच्चारण कर, अग्नि में हव्यद्रव्य का त्याग किया जाता है, इसीलिए यह ज्वलन अर्थात् अग्नि की, वल्लभा अर्थात् जाया है ।

'द्रीं' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है – धूम्रभैरवी अर्थात् ई-कार । इसके द्वारा संयुक्त होकर बलिभोजन अर्थात् 'द'-कार, नाद एवं बिन्दु से युक्त होने पर उत्तम किङ्किणी-बीज-रूप में परिणत हो जाता है ।।28।।

'द्रां' मन्त्र का वर्णन इस प्रकार है – नाद-बिन्दु से समायुक्त होकर बलिभोजन द्-कार, आ-कार से युक्त होने पर, इस प्रकार बीज-रूप में परिणत होता है एवं विशिकारूप महामन्त्र कहा जाता है । यह करालास्य अर्थात् 'आ'-कार से युक्त होने पर 'द्रां' बीज में परिणत हो जाता है ।।29।।

।।'दूं'।। बलिभुक्-दकार, क्षतजोक्षित 'र'-कार – ये दो 'उ'-कार एवं नादबिन्दु से समायुक्त होने पर, पिशिताशन अर्थात् मांसभक्षक-रूप भीषण बीज में परिणत हो जाता है । विदारी अर्थात् ऊकार ।।30।।

।। फैं ।। हे वीरपत्नि ! धूम के द्वारा उज्ज्वल करालाग्नि, चन्द्र एवं बिन्दु के द्वारा ऊर्ध्वकेशी होने पर युगान्तकारक बीजरूप में प्रकाशित होता है । करालाग्नि का अर्थ है 'फ'-कार एवं इन्दुबिन्दु का अर्थ है 'चन्द्रबिन्दु' । ऊर्ध्वकेशी अर्थात् 'ए'-कार । (फ्, ए, ँ = फैं) ।।31।।

।।पँल्ल।। संहारी ल्-कार एवं ऊर्ध्वकेशी एकार ल्कार अथवा एकरयुक्त कपर्दी पकार, नाद-बिन्दु के साथ मिलित होने पर वैतालिक बीज में परिणत हो जाता है । (पल्ल् पेल्ल्) ।।32।।

सनादबिन्दु क्रोधीशं गुह्ये संहारिणी स्थितम् ।
कम्पिनीवीजमित्युक्तं चण्डिकाख्यं मनोहरम् ॥ कँल्रृ ॥33॥
कपर्दिनं समादाय क्षतजोक्षित-संस्थितम् ।
संयुक्तं धूम्र-भैरव्या ध्वाङ्क्षोऽयं नादबिन्दुमान् ॥ प्रीं ॥34॥
कपलीद्वयमादाय महाकालेन मण्डितम् ।
सनाद-स्तनमित्युक्तं चण्डिकाख्यं पयोधरम् ॥ ठं ठँ ॥35॥
प्रलयाग्निस्थितो धूमध्वजो गुह्ये सबिन्दुमान् ।
संयुक्तो धूम्रभैरव्या स्मृता फेत्कारिणी प्रिये ॥ स्फीं ॥36॥
क्षतजस्थं व्योमवक्त्रं बिन्दुखण्डेन्द्वलङ्कृतम् ।
खद्योतमिति विख्यातं ग्रासिनी कालरात्रियुक् ॥ ह्रीं ॥
क्षतजो क्षितमारूढं नादबिन्दुसमन्वितम् ।
विदारीभूषितं देवि बीजं वैवस्वतात्मकम् ॥37॥

इति दक्षिणाम्नाये सार्द्धलक्षग्रन्थे कङ्कालमालिनीतन्त्रे प्रथमः पटलः ॥1॥

।।कँल्र।। क्रोधीश क्कार एव संहारिणी ल्रकार । 'क'-कार के निम्न प्रदेश में ल्र-कार रहे एवं (उसमें) नादबिन्दु-युक्त हों, वैसा होने पर, (वह) 'मनोहर चण्डिका' नामक कम्पिनीबीज में परिणत हो जाता है ।।33।।

।।प्रीँ।। कपर्दी पकार, क्षतजोक्षित 'र'-कार एवं धूम्रभैरवी ई-कार । रेफ-संस्थित प-कार, इ-कार से युक्त होकर, नादबिन्दु के साथ मिलित होने पर सुन्दर 'प्रीँ' मन्त्र में परिणत हो जाता है ।।34।।

।।ठम् ठं।। कपाली – ठ-कार एवं महाकाल म-कार । म-कार एवं दो ठ-कार, नादबिन्दुयुक्त होकर महामन्त्र में परिणत हो जाता है । यह चण्डिका का स्तन स्वरूप है । (ठ् ठ् मँ) ।।35।।

।।स्फीं।। करालाग्नि फ-कार, धूमध्वज – स्कार, धूम्रभैरवी ई-कार । स-कार एवं फ-कार रेफ संयुक्त होकर, ई-कार एवं नादबिन्दु के योग से फेत्कारिणी के मन्त्ररूप में परिणत हो जाता है ।।36।।

।।रुं।। क्षतजोक्षित – 'र'-कार, विदारी ऊकार बनकर क्षतजोक्षित पर आरूढ़, नाद एवं बिन्दु से समन्वित तथा विदारी के द्वारा भूषित होने पर, हे देवि ! वैवस्वत अर्थात् सूर्य-स्वरूप मन्त्र में परिणत हो जाता है ।।37।।

दक्षिणाम्नाय में कङ्कालमालिनीतन्त्र में प्रथम पटल समाप्त ॥1॥

द्वितीयः पटलः

श्रीपार्वत्युवाच —

देवदेव महादेव नीलकण्ठ तपोधन।
योनिमुद्रां महादेव तत्त्वत्रयं परात् परम्।
एतदेव महादेव कथ्यतां मे पिनाकधृक् ॥1॥

श्रीईश्वर उवाच —

शृणु वक्ष्यामि देवेशि दासोऽहं तव सुव्रते।
अतिगुह्यं महत् पुण्यं तत्त्वत्रयं वरानने ॥2॥
सारात् सारं परं गुह्यमतिगोप्यं सुनिश्चितम्।
शङ्कापि जायते देवि कथं तत् कथयाम्यहम् ॥3॥
कथयामि महेशानि आज्ञया तव भाविनि।
न चेत्तत् कथ्यते देवि तव क्रोधः प्रजायते ॥4॥
त्वया क्रोधे वृते देवि हानिः स्यान्मम कामिनि।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं धर्मार्थकामदं प्रिये ॥5॥

श्रीपार्वती ने कहा — हे देवदेव महादेव ! हे तपोधन नीलकण्ठ ! परज्ञान की अपेक्षा भी उत्कृष्ट तत्त्वत्रय अर्थात् इच्छा, ज्ञान, क्रिया अथवा परा, पश्यन्ती, मध्यमा जिसमें है – ऐसी योनिमुद्रा को, हे पिनाकधृक् ! मुझे बतायें ।।1।।

ईश्वर ने कहा — हे शोभनव्रतशालिनी देवेशि ! मैं आपका दास हूँ। अतः हे वरानने ! अति गोपनीय होने पर भी अति पवित्र उन तत्त्वत्रययुक्त योनिमुद्रा आपको बताऊँगा, श्रवण करें ।।2।।

जो समस्त तन्त्रों का सार है, अति गुह्य है एवं सुनिश्चित रूप में अति गोपनीय है, उस मुद्रा को मैं आपको किस प्रकार से बताऊँ – इस प्रकार (सोचकर मन में) संशय उत्पन्न हो रहा है ।।3।।

हे भाविनि ! हे महेशानि ! आपके आदेश के अनुसार उसे (उस मुद्रा को) मैं आपको बता रहा हूँ। हे देवि ! यदि मैं आपको वह (मुद्रा) नहीं बताऊँगा, तो आपको अवश्य ही क्रोध उत्पन्न होने लगेगा ।।4।।

हे देवि ! हे कामिनि ! आपके क्रोध करने पर मेरी हानि होगी। हे प्रिये ! धर्म-अर्थ-कामप्रद मन्त्र का अर्थ 'मन्त्र चैतन्य' है ।।5।।

योनिमुद्रा महेशानि तृतीयं ब्रह्मस्वरूपिणी ।
अज्ञात्वा यो जपेन्मन्त्रं न हि सिद्धिः प्रजायते ॥6॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत ह्यकुर्वाणो विनश्यति ।
योनिमुद्रा महेशानि साक्षान्मोक्ष-प्रसाधिनी ॥7॥
तव योनिर्महेशानि प्रिया मम यथा प्रिये ।
सततं परमेशानि दासोऽहं तव योनिना ॥8॥
तवयोनिप्रसादेन मृत्युं जित्वा वरानने ।
मृत्युञ्जयोऽहं देवेशि सततं कमलानने ॥9॥
तव योनौ महेशानि ब्रह्माण्डं स चराचरम् ।
तिष्ठन्ति सततं देवि ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥10॥
मयूरस्य महेशानि पुच्छे कृत्वा च अद्भुतम् ।
योन्याकारं महेशानि दृष्ट्वा कृष्णः शुचिस्मिते ।
शिरे धृत्वा वरारोहे त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥11॥

एवं जो तृतीय ब्रह्मरूपिणी योनिमुद्रा है, हे महेशानि ! जो साधक (उसे) न जानकर केवल मन्त्र-जप करता है, (उसका) वह (जप) सिद्ध नहीं होता है ।।6।।

इस मुद्रा को जानकर भी जो (इसका जप) नहीं करता है, वह विनाश को प्राप्त हो जाता है । क्योंकि हे महेशानि ! 'योनि-मुद्रा' साक्षात् मोक्ष-प्रदायिनी है अर्थात् इस मुद्रा का अनुष्ठान करने पर, शीघ्र ही मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है ।।7।।

हे प्रिये महेशानि ! जिस प्रकार आप प्रिय हैं, उसी प्रकार आपकी योनि भी प्रिय है; क्योंकि हे परमेशानि ! आपकी योनि के लिए ही मैं सर्वदा के लिए आपका दास बन गया हूँ ।।8।।

हे वरानने ! आपकी योनि की कृपा से ही मैं मृत्यु का जय कर, हे देवेशि कमलानने ! सर्वदा मृत्युञ्जय-रूप में प्रसिद्ध हो गया हूँ ।।9।।

हे महेशानि ! आपकी योनि में सचराचर ब्रह्माण्ड निवास करता है एवं ब्रह्मा प्रभृति देवगण भी आपकी योनि में ही सतत् वास करते हैं ।।10।।

हे महेशानि ! योनि के आकार के समान मोर के पंख को अद्भुत देखकर, हे शुचिस्मिते, हे वरारोहे ! श्रीकृष्ण (योनि के समान आकरवाले) मोर-पंख को मस्तक पर धारण कर त्रैलोक्य को वशीभूत कर लेते हैं ।।11।।

तव योनिं महेशानि भावयामीत्यहर्निशम् ।
तत्रैव दृष्ट्वा ब्रह्माण्डं नान्यं पश्यामि कामिनि ।
कर्पूरपुलकोद्भुतं तव योनिपुरं परम् ॥12॥
तव योनिर्महेशानि तत्त्वत्रय सुपूजितम् ।
रेतोरजःसमायुक्तं साक्षात्मन्मथ-मन्दिरम् ॥13॥
न जाने किं कृतं कर्म कालिके कमलेक्षणे ।
तव योनौ महादेवि अतएव वरानने ।
योनिमुद्रां योनिबीजं सततं परमेश्वरि ॥14॥
अहं मृत्युञ्जयो देवि योनिमुद्रा-प्रसादतः ।
योनिबीजं महेशानि निगदाभि शृणु प्रिये ॥15॥
प्रथमे परमेशानि योगिनीं रुद्रयोगिनीम् ।
उद्धृत्य बहुयत्नेन बलबीजयुतं कुरु ।
बिन्द्वर्द्ध-चन्द्र-संयुक्तं बीजं त्रैलोक्य-मोहनम् ॥16॥

हे महेशानि ! मैं अहोरात्र आपकी योनि का ध्यान करता रहता हूँ । हे कामिनि ! उस (योनि) के मध्य में ही समस्त ब्रह्माण्ड को देखकर अन्य कुछ भी नहीं देखता हूँ । आपका योनिमण्डल जैसे- कर्पूरपुलक से उद्भुत है ॥12॥

हे महेशानि ! आपकी योनि, तत्त्वत्रय (=पृथिवी, जल एवं तेज) के द्वारा एवं मद्य, मांस एवं मैथुन – इन तीन तत्त्वों के द्वारा सुन्दर रूप से पूजित है । जो शुक्र एवं रजः से समन्वित है एवं साक्षात् कामदेव का मन्दिर है ॥13॥

हे कमलनयने कालिके ! मैं नहीं जानता कि मैंने आपकी योनि के विषय में क्या किया है । इसलिए हे वरानने महादेवि ! हे परमेश्वरि ! मैं सर्वदा ही योनिमुद्रा एवं योनिबीज की साधना करता रहता हूँ ॥14॥

योनिमुद्रा के अनुग्रह से ही मैं आज मृत्युञ्जय बना हूँ । हे प्रिये महेशानि ! मैं योनि बीज का वर्णन कर रहा हूँ, उसे श्रवण करें ॥15॥

हे परमेशानि ! पहले योगिनी एवं रुद्र-योगिनी-बीज का उद्धार कर, उसके साथ बलबीज को युक्त करें एवं उसके साथ चन्द्रबिन्दु को युक्त करने पर ही (वह) त्रैलोक्यमोहन योनिबीज में परिणत हो जायगा ॥16॥

बध्वा तु योनिमुद्रां वै पूर्वोक्तक्रमतः प्रिये ।
योनिवीजं महेशानि अष्टोत्तरशतं जपेत् ॥17॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यत् फलं लभते प्रिये ।
माहात्म्यं तस्य देवेशि वक्तुं को वा क्षमो भवेत् ॥18॥
यः करोति प्रसन्नात्मा रहस्ये योनिरूपिणीम् ।
ब्रह्माण्डं पूजयेत्तेन ब्रह्माद्या-स्त्रिदिवौकसः ॥19॥
तव योनिर्महेशानि परं-ब्रह्म-स्वरूपिणी ।
तव योनिर्महेशानि भवस्य-मोहिनी प्रिये ॥20॥
तव योनिर्महेशानि सिद्धिसूत्रेण वेष्टयेत् ।
सिद्धिसूत्रं महेशानि त्रिप्रकारं वरानने ॥21॥
ईड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना त्रितयं तथा ।
सदानन्दमयीं योनिं नानासुखविलसिनीम् ॥22॥
शृंङ्गारसमये देवि नान्तं गच्छामि पार्वति ।
मम लिङ्गो महेशानि भिनत्ति सकलं जगत् ॥23॥

हे महेशानि ! पूर्वोक्तक्रमसे योनिमुद्रा के बन्धनपूर्वक, योनिबीज का अष्टोत्तरशत जप करें । अष्टोत्तर शतबार योनिबीज का जप करने पर जो फल-लाभ होता है, हे देवेशि ! उसके माहात्म्य का दर्शन करने में कौन सक्षम है ? (अर्थात् कोई भी सक्षम नहीं है) ॥17-18॥

जो व्यक्ति प्रसन्नचित्त होकर रहस्य में (= रहस्यपूर्वक) योनिरूपिणी योनिमुद्रा का अनुष्ठान करता है, उस साधक के द्वारा ब्रह्मा प्रभृति देवगण भी पूजित होते हैं ॥19॥

हे महेशानि ! आपकी योनि परब्रह्मस्वरूपिणी है । हे प्रिये ! आपकी योनि संसार को मुग्ध बना देती है ॥20॥

हे महेशानि ! आपकी योनि को सिद्धि सूत्र के द्वारा वेष्टित करना चाहिए । हे वरानने ! वह सिद्धिसूत्र तीन प्रकार का है ॥21॥

(वे हैं –) इड़ा, पिङ्गला एवं तीसरा है सुषुम्ना । यह योनि नानाप्रकार के सुख एवं विलास से युक्ता तथा सदानन्द प्रदायिनी है ॥22॥

हे देवि ! रमणकाल में उसका अन्त नहीं मिलता है । हे महेशानि ! मेरा लिङ्ग समस्त जगत् को विदीर्ण कर देता है ॥23॥

तथापि परमेशानि नान्तं गच्छामि कामिनि।
तव योनिर्महेशानि न जाने कीदृशीं गतिम् ॥24॥
तव योनिर्महेशानि आद्या प्रकृतिरूपिणी।
सदा कुण्डलिनीं योनिं महाकुण्डलिनीं पराम् ॥25॥
यः सदा परमेशानि योनिं दृष्ट्वा वरानने।
जपेद्बीजं वरारोहे भगाख्यं भगरूपिणम् ॥26॥
योनिं बध्वा महेशानि भग-बीजेन पार्वति।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मम तुल्यो भवेत् प्रिये ॥27॥
तव योनौ महेशानि रमणं यत्नश्चरेत्।
तस्या रमणमात्रेण ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
स एव धनवान् वाग्मी वागीश-समतां व्रजेत् ॥28॥

श्रीदेव्युवाच –

नीलकण्ठ महादेव रहस्यं कृपया वद।
यदि नो कथ्यते देव विमुञ्चामि तदा तनुम् ॥29॥

हे कामिनी ! फिर भी उसका कोई अन्त (मुझे) नहीं मिलता है। हे परमेशानि ! मुझे नहीं पता है कि आपकी योनि की गति किस प्रकार की है ? ॥24॥

हे परमेशानि ! आपकी योनि आद्या प्रकृतिरूपिणी, कुण्डलिनी एवं महाकुण्डलिनी स्वरूपा है। साधक को चाहिए कि वह योनि दर्शन-पूर्वक योनिस्वरूप योनिबीज का जप करें ॥25-26॥

हे पार्वति ! योनि को बाँधकर, जो साधक अष्टोत्तर शतबार योनिबीज का जप करता है, हे प्रिये ! वह साधक मेरे ही तुल्य बन जाता है ॥27॥

हे महेशानि ! आपकी योनि में यत्नपूर्वक रमण करना चाहिए। इससे, रमण करते ही (साधक) ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव बन जाता है एवं वह साधक ही धनवान् एवं वाग्मी बनकर बृहस्पति के समान बन जाता है ॥28॥

देवी ने कहा – हे नीकण्ठ महादेव ! कृपा करके मेरे निकट रहस्य का वर्णन करें। यदि मेरे निकट उसका वर्णन आप नहीं करते हैं तो, हे देव ! मैं अपने इस शरीर का त्याग कर दूँगी ॥29॥

ईश्वर उवाच –

श्रृणु पार्वति कृष्णाङ्गि खञ्जनाक्षि सुलोचने ।
गोपनीयं रहस्यं हि सर्वकामफलप्रदम् ॥30॥
तिस्त्रः कोट्यस्तद्वर्धेन शरीरे नाड़िका मताः ।
तासु मध्ये दश प्रोक्ता-स्तासु तिस्त्रो व्यवस्थिताः ॥31॥
प्रधाना मेरुदण्डाग्रे चन्द्रसूर्याग्नि-रूपिणी ।
मज्जयित्व सुषुम्नायामहं योगी सुरेश्वरि ॥32॥
षट्चक्रे परमेशानि भावयेद् योनिरूपिणीम् ॥33॥
प्रथमं परमेशानि आधारयुग-पत्रकम् ॥34॥
वादि सान्तैश्चतुर्वर्णै-द्युतहेमसमप्रभम् ।
तड़ितकोटि-प्रभाकरं स्थानं परमदुर्लभम् ॥35॥

शिव ने कहा – हे कृष्णाङ्गि ! हे अञ्जानाक्षि पार्वति ! सभी प्रकार के मनोरथपूर्णकारी इस योनिरहस्य को अवश्य ही गोपन करना चाहिए ॥30॥

मानव-शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ विद्यमान हैं । उनमें दस (नाड़ियाँ) एवं दस में भी तीन (नाड़ियाँ) प्रधान रूप से व्यवस्थित हैं ॥31॥

मेरुदण्ड के मूलप्रदेश में चन्द्र, सूर्य एवं अग्निरूपिणी (तीन नाड़ियाँ) प्रधान रूप में विद्यमान हैं (इड़ा = चन्द्र, पङ्गला = सूर्य एवं सुषुम्ना = अग्नि) । हे सुरेश्वरि ! मैं सुषुम्ना में डुबकी लगाकर ही योगी बना हूँ ॥32॥

शरीर के मध्य में जो षट्चक्र हैं, हे परमेशानि ! उक्त षट्चक्र में योनिरूपिणी भगवती की भावना (अर्थात्) ध्यान करें । (षट्चक्र हैं – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा) ॥33॥

हे परमेशानि ! षट्चक्रों में प्रथम चक्र है – आधार चक्र । वह चार पत्रों या पंखुड़ि-विशिष्ट एक पद्म के आकार में वर्तमान है । (चार पत्रों या पंखुड़ियों पर यथाक्रम से 'व' 'स' 'ष' 'श' – ये चार वर्ण शोभायमान हैं एवं उनकी क्रान्ति गलित सुवर्ण के समान हैं) ॥34॥

चार पत्रों पर या पंखुड़ियों पर यथाक्रम से 'व' 'श' 'ष' 'स' – ये चार वर्ण शोभायमान हैं एवं वह आधारचक्र गलित सुवर्ण के समान कान्तियुक्त है । केवल यही नहीं, वरन् कोटि विद्युत् के समान उसकी कान्ति है – ऐसा कहना चाहिए । यह स्थान परम दुर्लभ है ॥35॥

तत्कर्णिकायां देवेशि त्रिकोणमतिसुन्दरम् ।
इच्छाज्ञानं क्रियारूपं ब्रह्मविष्णु-शिवात्मकम् ॥36॥
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गञ्च कुण्डलीवेष्टितं सदा ।
त्रिकोणाख्यं तु देवेशि लङ्कारं चिन्तयेत्तथा ॥37॥
ब्रह्माणं तत्र सञ्चिन्त्य कामदेवञ्च चिन्तयेत् ।
बीजं तत्रैव निश्चिन्त्यं पानावादानमेव च ॥38॥
पदे च गमनं पायौ विसर्गं नसि कामिनि ।
घ्राणं संचिन्त्यं देवेशि महेशि प्राणवल्लभे ॥39॥
डाकिनी परमाराध्यां शक्तिञ्च भावयेत्ततः ।
एतानि गिरिजे मातः पृथ्वीं नीत्वा गणेश्वरि ॥40॥
तन्मध्ये लिङ्गरूपं हि कुण्डलीवेष्टितं प्रिये ।
तत्र कुण्डलिनीं नित्यां परमानन्द-रूपिणीम् ॥41॥
तत्र ध्यानं प्रकुर्वीत सिद्धिकामो वरानने ।
कोटिचन्द्र-प्रभाकारां परंब्रह्म-स्वरूपिणीम् ॥42॥

हे देवेशि ! उसकी कर्णिका में एक अति सुन्दर त्रिकोण है, जो इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्तिरूप में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवात्मक है ॥36॥

मध्य में कुण्डलीवेष्टित स्वयम्भू लिङ्ग शोभायमान हैं । हे देवेशि ! उस त्रिकोण के मध्य में 'लं' इस मन्त्र का चिन्तन करें ॥37॥

ब्रह्मा का चिन्तन कर कामदेव का भी चिन्तन करें । उस स्थल पर वीज का भी चिन्तन करें ॥38॥

चरण में गमन, पायु में विसर्जन, नासिका में गन्ध । हे कामिनि ! हे देवेशि ! हे प्राणवल्लभे ! पूर्वोक्त इन्द्रियों में उसके पूर्वोक्त विषयों का चिन्तन करें ॥39॥

उस स्थल पर परमाराध्या डाकिनीशक्ति की भावना करें । हे गणेश्वरि गिरिजे ! मातः ! पूर्वोक्त विषयों को पृथिवीतत्त्व में ले जावें ॥40॥

त्रिकोण के मध्य में मूलाधार में, हे प्रिये ! कुण्डलीवेष्टित लिङ्ग-रूप से राजमान हैं । उस स्थल पर नित्या परमानन्दस्वरूपिणी कुण्डलिनी भी विराज कर रही हैं ॥41॥

हे वरानने ! सिद्धिकामी साधक उस स्थल पर सर्वदा ध्यान करें । जिनकी काया कोटि चन्द्रों के समान हैं, एवं विध परब्रह्मस्वरूपिणी कुण्डलिनी का ध्यान

चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च वराभयकरन्तथा ।
तथा च पुस्तकं वीणां धारिणीं सिंहवाहिनीम् ॥43॥
गच्छन्ति स्वाशनं भीमां नानारूपधरां पराम् ॥44॥
पूर्वोक्तां पृथिवीं धन्यां गन्धे नीत्वा महेश्वरि ।
आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मानं नगेन्द्रजे ॥45॥
कुण्डलिन्या सह प्रेमे गन्धमादाय साधकः ।
सोऽहमिति मनुना देवि स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत् ॥46॥
तत्पद्मं लिङ्गमूलस्थं सिन्दूराभञ्च षड्दलम् ।
स्फुरद्विद्रुम-सङ्काशैर्वादि-लान्तैः सुशोभितम् ॥47॥
तत्कर्णिकायां वरुणं तत्रापि भावयेद्धरिम् ।
युवानां राकिणीं शक्तिं चिन्तयित्वा वरानने ॥48॥
रसनेन्द्रिय-पुष्पस्थं जलञ्च काम-लालसे ।
एतानि गन्धञ्च शिवे रसे नीत्वा विनोदिनीम् ॥49॥

करें । चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, वराभयदायिनी एवं सिंहवाहिनी तथा वीणापुस्तक धारिणी का ध्यान करें ॥42-43॥

उत्कृष्ट विविध रूपधारिणी एवं भीमदर्शना देवी सुन्दर आसन पर शोभायमान हैं ॥44॥

हे महेश्वरि ! पूर्वोक्त पृथिवीतत्त्व को उसके विषय-गन्ध में लीन करके, हे नगेन्द्रजे ! व्रण-मन्त्र के द्वारा जीवात्मा को आकर्षण करके – कुण्डलिनीदेवी के साथ साधक गन्ध को ग्रहण कर, हे देवि ! 'सोऽहम्' इस मन्त्र के द्वारा स्वाधिष्ठान में प्रवेश करावें ॥45-46॥

वह स्वाधिष्ठान पद्म लिङ्गमूल में विराजमान हैं । उसके छः दल हैं एवं उसकी कान्ति सिन्दूर के समान हैं । दीप्तिमान प्रवाल के समान व-कारादि ल-कारादि वर्ण के द्वारा वह सुशोभित है । (वं भं मं यं रं लं) ॥47॥

उसकी कर्णिका में वरुण विराजमान हैं । उस स्थल पर विष्णु का चिन्तन करें । हे वरानने ! जिनमें राकिनी नामक शक्ति है, उसका चिन्तन करके – इस स्वाधिष्ठानचक्र में जो रसनेन्द्रिय, जल एवं उपस्थ-रूप कर्मेन्द्रिय शोभायमान हैं, इन्हें एवं गन्ध को रस में मिलित करके, मणिपूर नामक पद्म में ले जावें ॥48-49॥

जीवात्मानं कुण्डलिनीं रसञ्च मणिपूरके ।
नीत्वा परमयोगेन तत्पद्मं दिग्दलं प्रिये ।।50।।
नीलवर्णं तड़िद्रूपं डादि-कान्तैश्च मण्डितम् ।
तत्कर्णिकायां सुश्रोणि वह्निं संचिन्त्य साधकः ।।51।।
तत्र रुद्रः स्वयं कर्त्ता संहारे सकलस्य च ।
लाकिनी-शक्ति-संयुक्तं भावयेत्तं मनोहरे ।।52।।
तत्र चक्षुरिन्द्रियञ्च कृत्वा तेजोमयं यजेत् ।
एतं रसञ्च सुभगे रूपे नीत्वा महाभगे ।।53।।
जीवात्मानं कुण्डलिनी-रूपञ्चानाहते नयेत् ।
बन्धूकपुष्प-सङ्काशं तद्पद्मं द्वादशारकम् ।।54।।
कादि-ठान्तैः स्फुरद्वर्णैः शोभितां हरवल्लभाम् ।
तत्कर्णिकायां वायुञ्चाजीव-स्थान-निवासिनम् ।।55।।

मणिपूर नामक पद्म में द्वितीय चक्रस्य रस को एवं कुण्डलिनीरूप जीवात्मा को उत्कृष्ट योग के द्वारा ले जावें । हे प्रिये ! 'मणिपूर' नामक पद्म दस-दल-विशिष्ट है ।।50।।

इस पद्म का वर्ण, नीलवर्ण तडित् के समान है एवं उकारादि ककारान्त वर्ण समुदाय के द्वारा (यह) सुशोभित है । हे सुश्रोणि ! उसकी कर्णिका में साधक को अग्नि-बीज 'रं' का चिन्तन करना चाहिए । (ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ) ।।51।।

उस स्थल पर, समस्त लोकों के संहारकर्त्ता रुद्र, लाकिनी शक्ति के साथ विराजमान हैं । हे मनोहरे ! उन लाकिनीशक्ति के साथ युक्त रुद्र की भावना करें ।।52।।

उस स्थल पर तैजस चक्षुरिन्द्रिय एवं उस (इन्द्रिय) का विषय 'रूप' शोभायमान हैं । हे सुभगे ! हे महाभागे ! स्वाधिष्ठान-स्थित 'रस' को 'रूप' में मिलित कराने के लिए (उसको) अनाहतचक्र में ले जावें ।।53।।

उस अनाहत पद्म में कुण्डलिनी-रूप जीवात्मा को भी ले जावें । इस अनाहत पद्म का वर्ण बन्धूक पुष्प के समान है एवं इस पद्म में द्वादश दल (= पंखुडियाँ) हैं ।।54।।

यह अनाहतचक्र ककारादि ठकारान्त (कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं) देदीप्यमान वर्णसमूह के द्वारा सुशोभित है एवं उसकी कर्णिका में जीवस्थान-निवासी वायुतत्त्व भी विद्यमान है ।।55।।

तत्र योनेर्मण्डलञ्च वाणलिङ्ग-विराजितम् ।
काकिनीशक्तिसंयुक्तं तत्र वायोस्त्वगिन्द्रियम् ॥56॥
एतत् रूपञ्च संयोज्य स्वर्गे रमण-कामिनी ।
जीवकुण्डलिनीं स्पर्शं विशुद्धौ स्थापयेत्ततः ॥57॥
धूम्रवर्णं कण्ठपद्मं षोडशस्वरमण्डितम् ।
तत्कर्णिकायामाकाशं शिवञ्च काकिनीयुतम् ॥58॥
वाचं श्रोत्रञ्च आकाशे संस्थाप्य नगनन्दिनि ।
एतानि स्पर्शं शब्दे च नीत्वा शङ्करि मत्प्रिये ॥59॥
जीवं कुण्डलिनीं शब्दञ्चाज्ञापत्रे निधापयेत् ।
नेत्रपद्मं शुक्लवर्णं द्विदलं ह-क्ष-भूषितम् ॥60॥
तत्कर्णिकायां त्रिकोणञ्चेद् बाणलिङ्गञ्च सङ्गतम् ।
मनश्चात्र सदा भाति हाकिनीशक्ति-लाञ्छितम् ॥61॥
बुद्धि-प्रकृत्यहङ्कारालक्षितं तेजसा परम् ।
जीवात्मानं कुण्डलिनीं मनश्चापि महेश्वरि ॥62॥

उस स्थल पर बाणलिङ्ग विराजित है – एवंविध एक योनिमण्डल है, उस स्थल पर काकिनी-शक्ति, त्वक् इन्द्रिय एवं उसका विषय वायुतत्त्व भी विद्यमान है ।।56।।

हे स्वर्ग में रमणकारिणी ! अब विशुद्धाख्य पद्म में पूर्वोक्त त्वगिन्द्रिय के विषय-स्पर्श को युक्त करके कुण्डलिनी-रूपी जीव को उस स्थल पर स्थापित करें ।।57।।

यह पद्म धूम्रवर्ण है एवं षोडश स्वरों के द्वारा भूषित है । इसकी कर्णिका में आकाश तत्त्व एवं काकिनीशक्तियुक्त शिव विराजमान हैं ।।58।।

हे नगनन्दिनी ! वहाँ पर वाक् एवं श्रोत्रेन्द्रिय को संस्थापित कर,हे मरी प्रिये शङ्करि ! उस स्थल पर शब्द के साथ स्पर्श का योग कर, कुण्डलिनीरूपी जीव को एवं शब्द को आज्ञापत्र में ले जावें । वहाँ पर जो नेत्रपद्म हैं, उसका वर्ण शुक्ल है एवं 'ह' तथा 'क्ष' इन दो दलों के द्वारा भूषित है ।।59-60।।

उसकी कर्णिका में बाणलिङ्ग से संयुक्त एक त्रिकोण है एवं वहाँ पर हाकिनीशक्ति-युक्त मन सर्वदा शोभायमान है ।।61।।

हे महेश्वरि ! बुद्धि, प्रकृति एवं अहंकार के द्वारा लक्षित उत्कृष्ट तैजस मन को एवं जीवात्मा के साथ कुण्डलिनी को वहाँ पर युक्त करें ।।62।।

सहस्त्रारे महापद्मे मनश्चापि नियोजयेत् ।
सहस्त्रारं नित्यपद्मं शुक्लवर्णमधोमुखम् ॥63॥
अकारादि-क्षकारान्तैः स्फुरद्वर्णैर्विराजितम् ।
तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः ॥64॥
सूर्यस्य मण्डलञ्चैव चन्द्रमण्डलमेव च ।
ततो वायुर्महानादो ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम् ॥65॥
तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गञ्च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
तदूर्ध्वे शङ्खिनी देवी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥66॥
तस्याधःस्ताच्च देवेशि चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।
त्रिकोणं तत्र संचिन्त्य कैलासमत्र भावयेत् ॥67॥
इह स्थाने महादेवि स्थिरचित्तो विधाय च ।
जीवजीवी गतव्याधिर्न पुनर्जन्मसंभवः ॥68॥
अत्र नित्योदिता वृद्धिक्षयहीना अमाकला ।
तन्मध्ये कुटिला निर्वाणाख्या सप्तदशी कला ॥69॥

आज्ञाचक्र के ऊर्ध्व में जो सहस्त्रार चक्र है, उसका वर्ण शुक्ल है एवं (वह) अधोमुख होकर विराजमान है । उस सहस्त्रार-रूप महापद्म में मनोनिवेश करें ॥63॥

अ-कार से क्ष-कार पर्यन्त देदीप्यमान समस्त वर्णों के द्वारा वह व्याप्त है । हे देवेशि ! उसकी कर्णिका में अन्तरात्मा एवं गुरु का आसन विद्यमान है ॥64॥

उसके ऊपर सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल विराजमान है । उसके ऊपर महानादयुक्त वायु है एवं उसके भी ऊपर ब्रह्मरन्ध्र शोभायमान है ॥65॥

उस ब्रह्मरन्ध्र में नित्य आनन्दमय निरञ्जन विसर्ग विद्यमान है । किसी के मत में –ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्वभाग में यह विसर्गमण्डल शोभायमान है । उसके ऊपर शङ्खिनीदेवी का स्थान है । यह शङ्खिनीदेवी ही सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी शक्ति है ॥66॥

हे देवेशि ! उसके निम्न प्रदेश में चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित जो त्रिकोण है, उसका चिन्तन करते हुए इस स्थल पर ही कैलास की भावना करें ॥67॥

हे महादेवि ! पूर्वोक्त स्थान में स्वीय चित्र को स्थिर अर्थात् निरुद्ध करने पर साधक विगतव्याधि बन जाता है एवं (उसका) जीव-जीवि-भाष सम्बन्ध नष्ट हो जाने के बाद फिर पुनर्जन्म सम्भव नहीं होता है ॥68॥

इस स्थान पर ही वृद्धि-क्षय-रहित अमाकला नित्य उदित होती है । उसी के मध्य में कुटिल-निर्वाण नामक सप्तदशी कला विद्यमान है ॥69॥

निर्वाणाख्यान्तरगता वहिरूपा निरोधिका ।
नादोऽव्यक्तस्तदुपरि कोट्यादित्यसमप्रभा ॥70॥
निर्वाणशक्तिः परमा सर्वेषां योनिरूपिणी ।
अस्यां शक्तौ शिवं ज्ञेयं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
अत्रैव कुण्डलीशक्तिर्मुद्राकारा सुरेश्वरि ॥71॥
पुनस्तेन प्रकारेण गच्छन्त्या धारपङ्कजे ॥72॥
कथिता योनिमुद्रेयं मया ते परमेश्वरि ।
विना येन न सिद्धेन निहरेत् परमात्मना ॥73॥
तद्दिव्यामृतधाराभि र्लाक्षाभाभि र्महेश्वरि ।
तर्पयेद्देवतां योगी योगेनानेन साधकः ॥74॥
कुण्डलीशक्तिसिद्धिः स्याद्वर्णकोटिशतैरपि ।
तस्माद्त्वयापि गिरिजे गोपनीयं प्रयत्नतः ॥75॥
मन्त्ररूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वा षट्चक्रमण्डले ।
कन्दमध्यात् सुमधुरं कूजन्तीं सततोत्थिताम् ॥76॥

उस निर्वाण नाम्नी सप्तदशी कला के अन्तर्गत बाह्यरूप निरोधकारिणी एक कला है, जहाँ पर सर्वदा अव्यक्त नाद उत्थित होता रहता है । उसी के ऊर्ध्व में कोटि आदित्य के समान प्रभा विराजमान है ॥70॥

यही योनिरूपिणी सभी की निर्वाणशक्ति है, इसी शक्ति में निर्विकार निरञ्जन शिव विराजमान हैं । हे सुरेश्वरि ! इसी स्थल पर मुद्रा के आकार में कुण्डलीशक्ति भी विद्यमान हैं । यह कुण्डलीशक्ति पुनः उसी प्रकार से आधार-कमल (मूलाधार-चक्र) में चली जाती है ॥71-72॥

हे परमेश्वरि ! आपके निकट मैं इस योनिमुद्रा का वर्णन किया हूँ । जिसकी सिद्धि के बिना परमात्मा की प्राप्ति दुर्लभ है ॥73॥

लाक्षारस की आभा के समान उस दिव्य अमृत-धारा के द्वारा साधक योगी निरन्तर आराध्य देवता का तर्पण करें ॥74॥

शतकोटि वर्णों के द्वारा भी कुण्डलीशक्ति की सिद्धि हो सकती है । अतः हे गिरिजाया ! प्रयत्नपूर्वक इसे गोपन रखें ॥75॥

षट्चक्रमण्डल में मन्त्ररूपा कुण्डलिनी का ध्यान करने पर, कन्दमध्य से सतत् सुमधुर कूजन करते हुए कुण्डलिनी उत्थान करती रहती हैं ॥76॥

गच्छन्तीं ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं स्वकेतनम् ।
मूलाधारे च तां देवीं संस्थाप्य वीरवन्दिते ॥77॥
चित्रिणीग्रथिता माला जापं ब्रह्माण्डसुन्दरि ।
रहस्यं परमं दिव्यं मन्त्रचैतन्यमीरतम् ॥78॥
मुद्राचैतन्ययोर्ज्ञानं वर्णानां ज्ञानमेव च ।
मन्त्रार्थं कथितं देवि तव स्नेहात् प्रियम्वदे ॥79॥
अस्य ज्ञानं विना भद्रे सिद्धिर्न स्यात् सुलोचने ।
इति ते कथितं देवि योनिक्रीड़नमुत्तमम् ॥80॥

श्रीईश्वरी उवाच —

सुरासुरजगद्वन्द्य पार्वतीभगसेवक ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योनेः कवचमुत्तमम् ॥81॥

श्रीमहादेव उवाच —

यद् धृत्वा पठनात् सर्वाः शक्तयो वरदाः प्रिये ।
एतस्य कवचस्यापि ऋषिश्च श्रीसदाशिवः ॥82॥

(कुण्डलिनी) मूलाधार से उत्थान कर ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा गमनपूर्वक स्वकीय स्थान में (सहस्रार में) प्रवेश करती हैं । हे वीरवन्दिते देवि ! उस स्थान से कुण्डलिनी को पुनः मूलाधार में प्रत्यावर्त्तन कराकर (उसे) संस्थापित करें ।।77।।

हे ब्रह्माण्डसुन्दरि ! चित्रिणी के द्वारा ग्रथित माला, जप के लिए प्रयुक्त किये जाने पर, मन्त्र-चैतन्त्र साधित होता है, जो साधक के लिए परम दिव्य रहस्य स्वरूप है ।।78।।

हे प्रियम्वदे ! आपके प्रति स्नेहपरवश होकर, मद्राका, मन्त्र-चैतन्य का एवं वर्णों के ज्ञानोपाय का तथा मन्त्रार्थ का वर्णन किया हूँ ।।79।।

हे भद्रे ! हे सुलोचने ! इसके ज्ञान के बिना सिद्धि प्राप्ति असम्भव है – इस कारण ही, हे देवि ! आपके निकट उत्तम योनिक्रीड़ा का वर्णन किया हूँ ।।80।।

श्रीपार्वती ने कहा – हे सुरासुर-जगद्वन्द्य ! पार्वती के भग-सेवनकारी ! सम्प्रति उत्तम योनिकवच का श्रवण करने की इच्छा करती हूँ ।।81।।

ईश्वर ने कहा – हे प्रिये ! जिसे धारण करने पर या पाठ करने पर, सम्पूर्ण शक्ति ही वरदान में प्रयुक्त हो जाती है । इस कवच के ऋषि हैं श्रीसदाशिव ।।82।।

छन्दोगायत्रीदेवता योनिरूपा सनातनी ।
चतुर्वर्गेषु देवेशि विनियोगः प्रकीर्तितः ॥83॥

(योनिकवचम्)

ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः ।
(दक्षपादः) मम शिरो रक्षन्तु स्वाहा ॥84॥
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं
मं मः ॐ मां ॐ आकुटां मम रक्षन्तु स्वाहा मं मां ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं
मं मः मम हृदयादि दक्षबाहुं रक्षन्तु ॥85॥
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं
मं मः मम हृदयादि वामबाहुं रक्षन्ती ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं
मं मः दक्षपादं रक्षन्तु मम ॥86॥
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
वामपादं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा स्वाहा ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं
मं मः मम हृदादिषु नासां रक्षन्तु स्वाहा ॥87॥

(इसका) छन्द है गायत्री एवं देवता हैं स्वयं योनिरूपा सनातनी । हे देवेशि ! इसका विनियोग चतुर्वर्ग में किया जाता है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-रूप चतुर्वर्ग में इसका विनियोग किया जाता है ।।83।।

(योनिकवच)

ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः – मम शिरो रक्षन्तु स्वाहा ।।84।।

ॐ मं मां.....मं मः ॐ मां ॐ आकूटां मम रक्षन्तु स्वाहा मं मां ।
ॐ मं मां.....मं मः मम हृदयादि दक्षबाहुं रक्षन्तु ।।85।।
ॐ मं मां.....मं मः मम हृदयादि वामबाहुं रक्षन्तु ।
ॐ मं मां.....मं मः दक्षपादं रक्षन्तु मम ।।86।।
ॐ मं मां.....मं मः वामपादं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा स्वाहा ।
ॐ मं मां.....मं मः मम हृदयादि नासां रक्षन्तु स्वाहा ।।87।।

ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं
मं मः उपस्थं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा ।
ॐ मं मां मिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः
इदं हि योनिकवचं रहस्यं परमाद्भुतम् ॥88॥
अज्ञात्वा यो जपेन्मन्त्रं सर्वं निष्फलतां व्रजेत् ।
रहस्यं परमं दिव्यं सावधानावधारय ॥89॥
मूलाधारे महेशानि जपेद् यस्तु वरानने ।
मूलाधारे महेशानि वरारोहेऽन्तरात्मनि ॥90॥
प्रतिचक्रे महेशानि पठेद् योनिं सनातनीम् ।
चन्द्रसूर्यपरागे च पठेद्वा कवचं प्रिये ॥91॥
स्वनारीं रमयेत् यस्तु परनारीमथापि वा ।
कवचस्य प्रसादेन योनिमुद्रा हि सिद्धति ॥92॥
इदं हि कवचं देवि पठित्वा कमलानने ।
मैथुनं महदाख्यानं त्वया सह मया कृतम् ॥93॥
कवचस्य प्रसादेन जना यान्ति परां गतिम् ।
भूर्जपत्रे समालिख्य स्वयम्भू-कुसुमेन तु ॥94॥

ॐ मं मां.....मं मः उपस्थं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा ।
ॐ मं मां.....मं मः इदं हि योनिकवचं रहस्यपरमाद्भुतम् ।।88।।

जो साधक इस योनि कवच को न जानकर ही जप करता है, उसका समस्त मन्त्र-जप ही निष्फल हो जाता है । अतः परम दिव्य इस रहस्य को सावधानीपूर्वक याद रखें । हे महेशानि ! हे वरानने ! जो साधक मूलाधार में अन्तरात्मा के कवच का जप करता है, उसकी मन्त्रसिद्धि होती है ।।89।।

हे महेशानि ! प्रत्येक चक्र में सनातनी योनि के कवच का पाठ करें अथवा हे प्रिये ! चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण में कवच का पाठ करें ।।91।।

स्वकीया नारी में या परकीया नारी में रमण करो; किन्तु कवच में अनुग्रह से ही योनिमुद्रा की सिद्धि की प्राप्ति होती है ।।92।।

हे कमलानने ! हे देवि ! इस कवच का पाठ कर, आपके साथ महत्-आख्यान-युक्त मैथुन किया हूँ ।।93।।

कवच के अनुग्रह से ही लोग परमगति को प्राप्त होता है । भूर्जपत्र पर कुङ्कुम के द्वारा लिखकर ।।94।।

शुक्लेन कुसुमेनापि रोचनालक्तकेन च ।
स्वर्णस्थां गुटिकां कृत्वा धारयेद् यस्तु मानवः ॥95॥
इहलोके परत्र च स एव श्रीसदाशिवः ।
अष्टोत्तरशतञ्चास्य प्रपठेत् सिद्धिवाञ्छया ॥96॥
किमत्र बहुनोक्तेन अस्मात् परतरो नहि ।
नमो योन्यै नमो योन्यै कुण्डलिन्यै नमो नमः ॥97॥

इति दक्षिणाम्नाये सार्द्धलक्षग्रन्थे कङ्कालमालिनीतन्त्रे
योनिमुद्रादिकथनं द्वितीयः पटलः ॥2॥

शुभ्र पुष्प के द्वारा, गोरोचना के द्वारा अथवा अलक्त के द्वारा लिखकर, सुवर्ण-निर्मित ताबीज के मध्य में, गुटिका-रूप में रखकर, जो मानव धारण करता है ॥95॥

वह इहलोक में एवं परलोक में भी श्रीसदाशिव-रूप में विराजित होता है । यदि सिद्धि की आकांक्षा है, तो प्रतिदिन अष्टोत्तर शतबार योनिकवच का पाठ करें ॥96॥

विशेष वक्तव्य और क्या हो सकता है ? इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है । अतः योनि को बार-बार नमस्कार करता हूँ । उनके साथ कुण्डलिनी देवी को भी बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥97॥

दक्षिणाम्नाय में सार्द्धलक्षग्रन्थ में कङ्कालमालिनीतन्त्र में योनिमुद्रादि कथन नामक द्वितीय पटल समाप्त ॥2॥

तृतीयः पटलः

(गुरुपूजन-कवच-गीतकथनम्)

श्रीदेव्युवाच —

इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुरुपूजनमुत्तमम् ।।1।।

श्रीईश्वर उवाच —

कथयामि महादेवि अप्रकाश्यं वरानने ।
निर्गुणञ्च परं ब्रह्म गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।।2।।
महामन्त्रं महेशानि गोपनीयं परात् परम् ।
तत्र ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति सादरम् ।।3।।
सहस्त्रदलपद्मस्थ-मन्तरात्मानमुज्ज्वलम् ।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वले ।।4।।
चिन्तयेन्निजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम् ।
वीरासनसमासीनं मुद्राभरणभूषितम् ।।5।।

(गुरु की पूजा एवं कवचगीत का कथन)

श्रीदेवी ने कहा — सम्प्रति मैं, जो उत्तम गुरु-पूजन है, उसके विषय में श्रवण की इच्छा करती हूँ ।।1।।

महादेव ने कहा — हे वरानने ! इस अप्रकाश्य विद्या को आपके निकट बता रहा हूँ । 'गुरु' – ये दो अक्षर निर्गुण परब्रह्म स्वरूप हैं ।।2।।

हे महेशानि ! यह महामन्त्र सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है । अतः इसे गोपन करके रखें । हे पार्वति ! सर्वप्रथम मैं ध्यान को बताऊँगा, उसे आग्रह के साथ श्रवण करें ।।3।।

सहस्त्रदल कमल के मध्य में ज्योतिःस्वरूप अन्तरात्मा विराजमान है । उसके ऊपर नाद एवं बिन्दु के मध्य में उज्ज्वल सिंहासन पर श्रीश्रीगुरु विराजमान हैं ।।4।।

रजताचल के समान शुभ्र उन अपने गुरुदेव का नित्य ध्यान करें । वहाँ पर गुरुदेव वीरासन में समासीन हैं एवं मुद्राभरण से भूषित हैं ।।5।।

शुभ्रमाल्याम्बरधरं वरदाभयपाणिनम् ।
वामोरुशक्तिसहितं कारुण्येनावलोकितम् ॥6॥
प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ॥7॥
वामोनोत्पलधारिण्या रक्ताभरणभूषया ।
ज्ञानानन्दसमायुक्तं स्मरेत्तन्नम पूर्वकम् ॥8॥
मानसैरूपचारैश्च संपूज्य कल्पयेत् सुधीः ॥9॥
गन्धं भूम्यात्मकं दद्याद् भावपुष्पैस्ततः परम् ।
धूपं वाय्वात्मकं देवि तेजसा दीपमेव च ॥10॥
नैवेद्यममृतं दद्यात् पानीयं वरुणात्मकम् ।
अम्बरं मुकुटं दद्याद् वस्त्रञ्चैव मम प्रिये ॥11॥
चामरं पादुकाच्छत्रं तथा लङ्कारभूषणैः ।
तत्तन्मुद्राविधानेन संपूज्याथ गुरुं यजेत् ॥12॥
यथाशक्ति जपं कृत्वा समर्प्य कवचं पठेत् ।
इति ते कथितं सम्यग् गुरुपूजनमुत्तमम् ॥13॥

वे शुभ्रमाल्य को धारण किये हुए हैं । उनके परिधान में शुभ्र वसन है । (उनके) हस्त में वरदाभय है एवं (वे) वामोरु-शक्ति के साथ करुणार्द्र-नेत्र से अवलोकन कर रहे हैं ।।6।।

रक्ताभरणों से भूषिता एवं हस्त में उत्पल-धारिणी प्रिया के द्वारा दक्षिण हस्त से जिनका चारु कलेवर धृत (= ग्रहण किया हुआ) है ।।7।।

वामहस्त में उत्पलधारिणी एवं रक्ताभरणभूषिता ज्ञानानन्दप्रदा शक्ति के द्वारा (गुरु) सदायुक्त हैं – एवंविध गुरु का, उनके नामग्रहण पूर्वक स्मरण करें ।।8।।

सुधी साधक मानस उपचारों के द्वारा उनकी मानस-पूजा (करने) की कल्पना करें ।।9।।

पृथिवीतत्त्व को गन्ध-रूप में, वायुतत्त्व को धूप-रूप में, अग्नितत्त्व को दीप-रूप में कल्पना करके भाव-रूपी पुष्पों के द्वारा उनकी पूजा करें ।।10।।

अमृत को नैवेद्य रूप में, वरुण को पानीय रूप में, आकाश को मुकुट रूप में एवं उसे ही वस्त्र रूप में कल्पना करके, हे प्रिये ! मानसपूजा करें ।।11।।

चँवर, पादुका, छत्र एवं अलंकार प्रभृति को तत् तत् मुद्रा के द्वारा कल्पित कर (उनके द्वारा) गुरु पूजन करें ।।12।।

मानसपूजा के अनन्तर यथाशक्ति इष्टमन्त्र का जप करें एवं जप समर्पण कर गुरुकवच पाठ करें ।।13।।

श्रीदेव्युवाच —

भूतनाथ महादेव कवचं तस्य मे वद ॥14॥

श्रीईश्वर उवाच —

अथ ते कथयामीशे कवचं मोक्षदायकम् ।
यस्य ज्ञानं विना देवि न सिद्धिर्न च सद्गतिः ॥15॥
ब्रह्मादयोऽपि गिरिजे सर्वत्र जयिनः स्मृताः ।
अस्य प्रसादात् सकला वेदागमपुरःसराः ॥16॥
कवचस्यास्य देवेशि ऋषिर्विष्णुरुदाहृतः ।
छन्दो विराड् देवता च गुरुदेवः स्वयं शिवः ॥17॥
चतुर्वर्गे ज्ञानमार्गे विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
सहस्त्रारे महापद्मे कर्पूरधवलो गुरुः ॥18॥
वामोरुगतशक्ति र्यः सर्वतः परिरक्षतु ।
परमाख्यो गुरुः पातु शिरसं मम वल्लभे ॥19॥
परापराख्यो नासां मे परमेष्ठिर्मुखं मम ।
कण्ठं मम सदा पातु प्रह्लादानन्द नाथकः ॥20॥

श्रीश्रीदेवी ने कहा — हे भूतनाथ महादेव ! सम्प्रति मेरे निकट उनके कवच का वर्णन करें ।।14।।

श्रीमहादेव ने कहा — हे देवि ! उनका कवच मोक्षदायक है । जिस (कवच) के ज्ञान के बिना सिद्धि एवं सद्गति होती ही नहीं ।।15।।

हे गिरिजे ! इस कवच के प्रभाव से ही समस्त वेद एवं आगम के तत्त्वज्ञ ब्रह्मा प्रभृति देवगण सर्वत्र ही विजयी हुए हैं ।।16।।

हे देवेशि ! इस कवच के ऋषि हैं विष्णु, छन्द है विराट् एवं देवता हैं गुरुदेव शिव स्वयं ।।17।।

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष-रूप चतुर्वर्ग में, ज्ञानमार्ग में सहस्त्रार रूप महापद्म पर कर्पूर के सदृश श्वेतवर्ण-विशिष्ट गुरु ही एकमात्र इस कवच के विनियोग हैं ।।18।।

जिनके वाम उरु पर शक्ति उपविष्ट हैं, एवं विध परम शिव सर्वत्र रक्षा करें । हे प्रिये ! परमगुरु मेरे मस्तक की रक्षा करें ।।19।।

परापरगुरु मेरी नासिका एवं परमेष्ठिगुरु मेरे मुख की रक्षा करें । परम आह्लाद या आनन्द के प्रभु मेरे कण्ठ की रक्षा करें ।।20।।

वाहू द्वौ सनकानन्दः कुमारानन्दनाथकः ।
वशिष्ठानन्दनाथश्च हृदयं पातु सर्वदा ॥21॥
क्रोधानन्दः कटिः पातु सुखानन्दः पदं मम ।
ध्यानानन्दश्च सर्वाङ्गं बोधानन्दश्च कानने ॥22॥
सर्वत्र गुरवः पान्तु सर्वे ईश्वररूपिणः ।
इति ते कथितं भद्रे कवचं परमं शिवे ॥23॥
भक्तिहीने दुराचारे दद्यान्मृत्युमवाप्नुयात् ।
अस्यैव पठनाद् देवि धारणाच्छ्रवणात् प्रिये ।
मन्त्राः सिद्धाश्च जायन्ते किमन्यत् कथयामिते ॥24॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ शिखायां वीरवन्दिते ।
धारणान्नाशयेत् पापं गङ्गायां कलुषं यथा ॥25॥
इदं कवचमज्ञात्वा यदि मन्त्रं जपेत् प्रिये ।
तत् सर्वं निष्फलं कृत्वा गुरुर्याति सुनिश्चितम् ॥26॥

जो सनक ऋषि को आनन्द दान करते हैं एवं जो कुमार को भी आनन्द दान करते हैं – एतादृश गुरु मेरे दोनों बाहुओं की रक्षा करें । जो वशिष्ठ को आनन्द प्रदान करते हैं, वे भी मेरे हृदय की रक्षा करें ।।21।।

क्रोधानन्द (मेरे) कटि की, सुखानन्द चरण की एवं ध्यानानन्द मेरे सर्वाङ्ग की तथा बोधानन्द कानन में मेरी रक्षा करें ।।22।।

ईश्वररूपी समस्त गुरु ही मुझे समस्त स्थानों में रक्षा करें । हे परम शिवे भद्रे ! मैंने आपके निकट इस प्रकार गुरुकवच का वर्णन किया ।।23।।

दुराचारी एवं भक्तिहीन मानव को इस कवच को प्रदान करने पर, मृत्यु-प्राप्ति अवश्यम्भावी है । हे देवि ! इस कवच को धारण एवं श्रवण करने पर मन्त्रसिद्धि होती है । मैं आपको (इस विषय में) अन्य क्या-क्या बताऊँ ।।24।।

हे वीरवन्दिते ! कण्ठ में, दक्षिण बाहु में अथवा शिखा में उसे धारण करने पर, गङ्गा में स्नान करने पर जिस प्रकार पाप नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार समस्त कलुष नष्ट हो जावें ।।25।।

हे प्रिये ! इस कवच के ज्ञान के बिना ही यदि कोई केवल मन्त्र का जप करता है, तो गुरु उसके समस्त जप को निष्फल कर देते हैं; यह सुनिश्चित है ।।26।।

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।।27।।

श्रीपार्वत्युवाच —

लोकेश कथ्यतां देव गुरुगीता मयि प्रभो ।।28।।

श्री शिव उवाच —

शृणु तारिणि वक्ष्यामि गीतां ब्रह्ममयीं पराम् ।
गुरुस्त्वं सर्वशास्त्राणामहमेव प्रकाशकः ।।29।।
त्वमेव गुरुरूपेण लोकानां त्राणकारिणी ।
गया गङ्गा काशिका च त्वमेव सकलं जगत् ।।30।।
कावेरी यमुना रेवा करतोया सरस्वती ।
चन्द्रभागा गौतमी च त्वमेव कुलपालिका ।।31।।
ब्रह्माण्डं सकलं देवि कोटिब्रह्माण्ड मेव च ।
न हि ते वक्तमर्हामि क्रियाजालं महेश्वरि ।।32।।
उक्त्वा उक्त्वा भावयित्वा भिक्षुकोऽयं नागात्मजे ।
कथं त्वं जननी भूत्वा वधूस्त्वं मम देहिनाम् ।।33।।

यदि शिव रुष्ट होते हैं तो गुरु ही रक्षा करते हैं; किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर जगत् में कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है ।।27।।

श्री पार्वती ने कहा — हे लोकेश, हे देव, हे प्रभो ! मेरे निकट गुरु-गीता का वर्णन करें ।।28।।

श्रीश्रीशिव ने कहा — हे तारिणी ! आप श्रवण करें । मैं आपको उत्कृष्ट ब्रह्ममयी गुरुगीता बताऊँगा । आपसमस्त शास्त्रों के गुरु हैं । किन्तु मैं ही उसका प्रकाशक हूँ । आप ही गुरु-रूप में जगत् का त्राण करतीं हैं । गया, गङ्गा एवं काशी – समस्त ही आप हैं ।।29-30।।

काबेरी, नर्मदा, यमुना, करतोया, सरस्वती, चन्द्रभागा एवं गोमती-रूप में आप ही कुलपालिका हैं । हे देवि ! निखिल ब्रह्माण्ड यहाँ तक कि करोड़ों ब्रह्माण्डों को भी, हे महेश्वरि ! आपके साधन-क्रियाओं को नहीं बता सकता हूँ ।।31-32।।

हे नगात्मजे ! उन सभी क्रियाओं को कहते-कहते एवं सोचते-सोचते यह शिव भिक्षुक बन गया है । आप समस्त प्राणियों की जननी होकर भी किस प्रकार मेरी वधू रूप में विराजित हो ? ।।33।।

तव चक्रं महेशानि अतीतः परमात्मनः ।
इति ते कथिता गीता गुरुदेवस्य ब्रह्मणः ॥34॥
संक्षेपेण महेशानि प्रभुरेव गुरुः स्वयम् ।
जगत् समस्तमस्थेयं गुरुस्थेयो हि केवलम् ॥35॥
तं तोषयित्वा देवेशि नतिभिः स्तुतिभिस्तथा ।
नानाविधद्रव्यदानैः सिद्धि स्यात् साधकोत्तमः ॥36॥

इति दक्षिणाम्नाये सार्द्धलक्षग्रन्थे कङ्कालमालिनीतन्त्रे श्रीगुरुपूजन-कवच-गीता कथनं नाम तृतीयः पटलः ॥3॥

हे महेशानि ! आपका चक्र परमात्मा के भी ज्ञानातीत है । इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप गुरुदेव की गीता का कथन किया गया ।।34।।

हे महेशानि ! संक्षेप में इसका सारमर्म यह है कि गुरु ही स्वयं प्रभु हैं । यह सम्पूर्ण जगत् अस्थिर (चंचल) है; किन्तु एकमात्र गुरु ही स्थिर वस्तु है ।।35।।

हे देवेशि ! उन गुरु को प्रणति एवं स्तुति के द्वारा एवं उन्हें नानाप्रकार के द्रव्य-प्रदान के द्वारा सन्तुष्ट करने पर साधकोत्तम शीघ्र सिद्धिलाभ कर लेते हैं ।।36।।

श्रीदक्षिणाम्नाय में सार्द्धलक्षग्रन्थ में कङ्कालमालिनीतन्त्र में श्रीगुरु के पूजन, गुरुकवच एवं गुरुगीता-कथन नामक तृतीय पटल समाप्त ॥3॥

चतुर्थः पटलः

(महाकाली मन्त्र-पूजा-कथनम्)

श्रीपार्वत्युवाच —

कथयस्व विरूपाक्ष महाकालीमनुं प्रभो ।।1।।

श्रीईश्वर उवाच —

अथातः संप्रवक्ष्यामि महाकालीमनुं प्रिये ।
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।2।।
श्रिया विष्णुं समः कान्त्या षण्मुखेन समः सुखी ।
शौचेन शुचिना तुल्यो बलेन पवनोपमः ।।3।।
वागीश्वरसमो वाचि धनेन धनपः स्वयम् ।
सार्वज्ञे शम्भुना तुल्यो दाने दधिचिना समः ।।4।।
आज्ञया देवराजोऽसौ ब्राह्मण्येन प्रजापतिः ।
भृगोरिव तपस्वी च चन्द्रवत् प्रीतिवर्द्धनः ।।5।।
तेजसाग्निसमो भक्त्या नारदः शिवकृष्णयोः ।
रूपेण मदनः साक्षात् प्रतापे भानुसन्निभः ।।6।।

(महाकाली-मन्त्र एवं पूजा-कथन)

श्रीपार्वती ने कहा — हे विरूपाक्ष प्रभो ! महाकाली मन्त्र का वर्णन करें ।।1।।

श्रीईश्वर ने कहा — अब मैं आपको महाकाली-मन्त्र बताऊँगा । जिसके विशेष ज्ञान-मात्र से ही (साधक) सिद्धीश्वर बन जाता है ।।2।।

(साधक) श्री में विष्णु के समान एवं कान्ति में कार्त्तिक के समान, सुखी, शौच में (पवित्रता में) अग्नि के समान एवं बल में पवन के समान, वाणी में वागीश्वर के समान, धन में स्वयं कुबेर, सर्वज्ञता में शम्भु के समान, दान में दधीचि के समान (बन जाता है) ।।3-4।।

(वह साधक) आज्ञा-पालन में जैसे देवराज हों, ब्राह्मण्य में ब्रह्मा के समान, भृगु के समान तपस्वी एवं चन्द्र के समान प्रीतिवर्धक (बन जाता है) । (उस साधक में) अग्नि के समान तेज, शिव एवं कृष्ण के प्रति नारद के समान भक्ति, मदन के समान रूप एवं सूर्य के समान प्रताप (उत्पन्न हो जाती है) ।।5-6।।

शास्त्रचर्चास्वाङ्गिरसो जामदग्न्यः प्रतिज्ञया ।
सिद्धानां भैरवः साक्षात् गङ्गेव मलनाशकः ॥7॥

अथवा बहुनोक्तेन किम्वा तेन वरानने ।
न तस्य दुरितं किञ्चित् महाकालीं स्मरेद्धिया ॥8॥

शब्दब्रह्ममयीं स्वाहां भोगमोक्षैकदायिकाम् ।
भोगेन मोक्षमाप्नोति श्रुत्वा गुरुमुखात् परम् ॥9॥

तां विद्यां शृणु वक्ष्यामि यया भैरवतां व्रजेत् ॥10॥

क्रोधीशं क्षतजारूढं धूम्रभैरवलक्षितम् ।
नादबिन्दुसमायुक्तं मन्त्रं स्वर्गेऽपि दुर्लभम् ॥11॥

एकाक्षरीसमा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिये ।
महाकाली गुह्यविद्या कलिकाले च सिद्धिदा ॥12॥

(वह साधक) शास्त्रचर्चा में अङ्गिरस के समान, प्रतिज्ञा में परशुराम के समान, सिद्धगणों में साक्षात् भैरव के समान एवं गङ्गा के समान मल-नाशक (बन जाता है) ।।7।।

हे वरानने ! अधिक कहने का क्या प्रयोजन ? जो साधक महाकाली का स्मरण करता है, उसमें किसी प्रकार का पाप नहीं रह सकता है ।।8।।

वह शब्दब्रह्ममयी, स्वाहारूपिणी, भोग एवं मोक्ष की एकमात्र वही प्रदायिनी हैं । गुरु के मुख से उनकी आराधना की रीति का श्रवण करने पर, भोग के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है । वही विद्या मैं आपको बताऊँगा, सुनें, जिस (विद्या) के द्वारा भैरवत्व की प्राप्ति होती है ।।9-10।।

क्रोधीश को क्षतजारूढ़ करके, धूम्र भैरवी को संयुक्त करके, उसमें नाद एवं बिन्दु का योग करने पर, जो मन्त्र बनता है, वह स्वर्ग में भी दुर्लभ है । 'क्रीं' मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार है – क्रोधीश-क्, क्षतज-र, धूम्रभैरवी-ई ।।11।।

हे प्रिये ! उक्त एकाक्षर मन्त्र के समान त्रिभुवन में कोई विद्य नहीं है । कलिकाल में गुह्यविद्यास्वरूपिणी महाकाली सिद्धिदात्री हैं । सम्प्रति कालिका के विषय में आपको बताऊँगा ।।12।।

अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि दक्षिणां कालिकां पराम् ।
वाग्भवं बीजमुच्चार्य कामराजं ततः परम् ।
मायाबीजं ततो भद्रे त्र्यक्षरं मन्त्रमीरितम् ॥13॥
कामराजं ततो कूर्च्यं मायाबीजमतः परम् ।
अपरं त्र्यक्षरं प्रोक्तं पूर्वोक्तं फलदं प्रिये ॥14॥
हालाहलं समुच्चार्य मायाद्वयमतः परम् ।
एतत्तु त्र्यक्षरं देवि सर्वकामफलप्रदम् ॥15॥
एतेषाञ्चैव मन्त्राणां फलमन्यत् शृणु प्रिये ।
न कालनियमो नास्ति नारिमित्रादि दूषणम् ॥16॥
कायक्लेशकरं नैव प्रयासो नास्य साधने ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ जपः सर्वत्र शोभनः ॥17॥
भोगमोक्ष विरोधोऽत्र साधने नास्ति निश्चितम् ।
भोगेन लभते मोक्षं नरोऽपि विद्ययानया ॥18॥

पहले वाग्भवबीज का उच्चारण कर, कामबीज का उच्चारण करें । बाद में मायाबीज का उच्चारण करने पर ही तीनअक्षरों का महामन्त्र बन जाता है अर्थात् ऐं क्लीं ह्रीं । वाग्बीज-ऐं, कामबीज-क्लीं, मायाबीज-ह्रीं ।।13।।

कामबीज का उच्चारण का 'कूर्च', फिर मायाबीज का उच्चारण करने पर और एक तीन अक्षरों का मन्त्र बन जाता है, जो पहले के समान ही फलप्रद है । 'क्लीं हूं ह्रीं । कामबीज-क्लीं, कूर्च-हूं, मायाबीज-ह्रीं ।।14।।

हालाहल का उच्चारण कर, फिर दो मायाबीज का उच्चारण करने पर, जो तीन अक्षरों का मन्त्र बनता है, हे देवि ! यह तीन अक्षरों का मन्त्र सभी प्रकार के कामप्रद एवं फलप्रद हैं । अर्थात् ॐ ह्रीं ह्रीं । हलाहल-ॐ । माया-ह्रीं ।।15।।

हे प्रिये ! इन समस्त मन्त्रों के अन्यान्य फलों का श्रवण करें । इन समस्त मन्त्रों के उच्चारण में किसी प्रकार का नियम नहीं है एवं शत्रु-मित्र प्रभृत्ति के कारण किसी प्रकार दूषण भी नहीं हो सकता है ।।16।।

इसके साधन में किसी प्रकार शारीरिक परिश्रम अथवा किसी प्रकार विशेष चेष्टा का भी प्रयोजन नहीं है । दिन में अथवा रात्रि में जिस किसी भी समय में क्यों न हो, सर्वक्षण मन्त्र जप करना ही शोभन है ।।17।।

यह सुनिश्चित है कि उपरि उक्त मन्त्र के साधन में, भोग अथवा मोक्ष के मध्य में किसी प्रकार विरोध नहीं है । इस विद्या के द्वारा जो कोई भी मानव भोग के द्वारा भी मोक्ष लाभ कर सकता है ।।18।।

अस्या जपात्तथा ध्यानात् लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।
नानया सदृशी विद्या नानया सदृशो जपः ॥19॥
नानया सदृशं ध्यानं नानया सदृशं तपः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यपूर्वं वदाम्यहम् ॥20॥
अनया सदृशी विद्या नास्ति सिद्धिः सुगोचरे ।
अथ संक्षेपतो वक्ष्ये पूजाविधि मनुत्तमम् ॥21॥
विस्तारे कस्य वा शक्तिः को वा जानाति तत्त्वतः ।
पूजा च त्रिविधा प्रोक्ता नित्य-नैमित्ति-काम्यतः ॥22॥
तत्रैव नित्यपूजाञ्च वक्ष्ये ताञ्च निशामय ।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ॥23॥
देवता मुनिभिः प्रोक्ता महाकाली पुरातनी ।
विनियोगस्तु विद्यायाः पुरुषार्थ चतुष्टये ॥24॥
पञ्चशुद्धि-विहीनेन यत् कृतं न च तत् कृतम् ।
पञ्चशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्प्यते ॥25॥

उक्त मन्त्रों के जप के द्वारा अथवा ध्यान के द्वारा (साधक) चार प्रकार की मुक्ति (सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य, सार्ष्टि) का लाभ कर सकता है । इसके समान विद्या अथवा इसके समान जप नहीं है ।।19।।

इसके समान ध्यान अथवा तप नहीं है । मैं आपको सत्य-सत्य ही शपथ पूर्वक यह बता रहा हूँ ।।20।।

इसके समान विद्या या सिद्धि त्रिभुवन में दृष्टिगोचर नहीं होता है । सम्प्रति संक्षेप में आपके निकट अनुत्तम पूजाविधि का वर्णन करूँगा ।।21।।

विस्तृत रूप से पूजा करने के लिए किसकी ही शक्ति है अथवा कौन ही इसके तात्त्विक विधान को जानता है ? पूजा तीन प्रकार की कही गयी है – नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य ।।22।।

उनमें नित्य पूजा का वर्णन करूँगा, उसका श्रवण करें । इनके ऋषि हैं – भैरव और छन्द उष्णिक् नाम से विख्यात है ।।23।।

उसके देवता रूप में पुरातनी महाकाली का कथन मुनियों के द्वारा किया गया है एवं इस विद्या का विनियोग है – पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के लिए ।।24।।

पञ्चशुद्धि के बिना पूजा करना या न करना समान है । पञ्चशुद्धि के बिना पूजा करने पर केवल अभिचार ही किया जाता है ।।25।।

आत्मशुद्धिः स्थानशुद्धिर्द्रव्यस्य शोधनन्तथा ।
मन्त्रशुद्धि-र्देवशुद्धिः पञ्चशुद्धिरितीरिता ॥26॥

भूप्रदेशे समे शुद्धिः पुष्प-प्रकार संकुले ।
आसनं कल्पयेदादौ कोमलं कम्बलन्तु वा ॥27॥

वामे गुरुन् पुनर्नत्वा दक्षिणे गणपतिं विभुम् ।
भूतशुद्धिं तथा कुर्यात् पूजायोग्यो यथा भवेत् ॥28॥

प्राणायामादि विधिवत् ऋष्यादि-न्यासमाचरेत् ।
आदौ शुद्धि भैरवाय ऋषये नम इत्यथ ॥29॥

उष्णिक् छन्दसे नमसा मुखे छन्दो विनिर्दिशेत् ।
मम प्रिये महाकाली देवतायै नमौ हृदि ॥30॥

ह्रीं बीजाय नमः पूर्वं हुं शक्तये नमोऽप्यथ ।
कवित्वार्थे विनियोग इति विन्यस्य वाञ्छया ॥31॥

आत्मशोधन, स्थानशोधन, द्रव्य का शोधन, मन्त्र-शोधन एवं देवता का शोधन – इन पाँचों को 'पञ्चशुद्धि' कहते हैं ॥26॥

समतल भूमि पर शोधन कर उपकरण-समुदायों का भी शोधन करना चाहिए । इसके लिए केवल पुष्प ही एकमात्र शोध-करण है । पहले किसी कोमल आसन अथवा कम्वल को स्थापित करें ॥27॥

वामभाग में गुरु को नमस्कार कर, दक्षिण में गणेश को प्रणाम करें । बाद में उसी प्रकार से भूतसिद्धि करें, जिससे पूजा के उपयुक्त (योग्य) बना जा सके ॥28॥

विधिवत् प्राणायामादि को करके, ऋषिन्यास, अङ्गन्यास प्रभृति का अनुष्ठान करें । आदि में शुद्धि के ऋषि – भैरव को नमस्कार कर, उष्णिक् छन्द को नमस्कार करने के द्वारा मुख में छन्द का निर्देश करें । हे प्रिये ! हृदय में महाकाली देवता के उद्देश से नमस्कार करें ॥29-30॥

पहले 'ह्री' बीज को नमस्कार 'ह्री बीजाय नमः' इस मन्त्र के द्वारा करें । बाद में 'हूं शक्तये नमः' इस मन्त्र के द्वारा शक्ति को नमस्कार करें । कवित्व (प्राप्ति) के लिए इस प्रकार कामना के अनुसार न्यास करें ॥31॥

केवलां मातृकां न्यस्य बीजन्यसं समाचरेत् ।
ॐ क्रां अङ्गुष्ठयोर्नस्य ॐ क्रीं तर्जन्योर्नमः ॥32॥
ॐ क्रूं मध्यमयोर्नस्य ॐ क्रैं अनामिका-द्वयोः ।
ॐ क्रौं कनिष्ठा-युगले ॐ क्रः करतले तथा ॥33॥
पुनर्हृदयादिष्वेतै-र्जातियुक्तैः षडङ्गकम् ।
षड्दीर्घ-भावं स्वबीजैः प्रणवाद्यैस्तु विन्यसेत् ॥34॥
वर्णन्यासं तथा कुर्यात् येन देवीमयो भवेत् ।
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ च हृदये न्यसेत् ॥35॥
ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ वै दक्षिणे भुजे ।
ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ वै वामके भुजे ॥36॥

केवल मातृकान्यास कर बीजन्यास का अनुष्ठान करें । 'ॐ क्रां' इस मन्त्र के द्वारा अङ्गुष्ठद्वय का न्यास कर, 'ॐ क्रीं' इस मन्त्र के द्वारा दो तर्जनियों का न्यास करें ।।32।।

'ॐ क्रूं' इस मन्त्र के द्वारा मध्यमा-अंगुलिका न्यास करें । 'ॐ क्रैं' इस मन्त्र के द्वारा अनामिका का न्यास करें । 'ॐ क्रौं' इस मन्त्र के द्वारा कनिष्ठाद्वय का न्यास एवं 'ॐ क्रः करतले फट्'– इस मन्त्र के द्वारा करतल का न्यास करें ।

मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए 'नमस्' शब्द के योग में चतुर्थ्यन्त पद बनाकर पाठ करना चाहिए । यथा – ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ तर्जनीभ्यां नमः इत्यादि ।।33।।

पुनः हृदयादि अङ्गों में अर्थात् छः स्थानों में यथाक्रम से हृदय, मस्तक, शिखा, कवच, नेत्र एवं करतल – इन अङ्गों में न्यास करना चाहिए । उसमें प्रणवादि स्वबीज के द्वारा ही अङ्गन्यास करने का विधान है । यथा – ॐ हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ शिखायै नमः (वषट्), ॐ कवचाय हुं, ॐ नेत्र त्रयाय नमः (वौषट्), ॐ करतल-पृष्ठाभ्यां फट् इत्यादि । स्व-बीज अर्थात् अपना बीजमन्त्र । उसके आदि में ॐ-कार दें।।34।।

वर्णन्यास को इस प्रकार करना है, जिससे साधक देवीमय बन जाय । यथा – अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः – ऐसा कहकर हृदय में न्यास करें ।।35।।

एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः – दक्षिण भुजा में । ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः – वाम भुजा में ।।36।।

ण त थ द ध न प फ ब भ दक्षजङ्घके न्यसेत् ।
म य र ल व श ष स ह ल क्ष वामजङ्घके ॥37॥
पञ्चधा सप्तधा वापि मूलविद्यां समुच्चरन् ।
शिर आदि च पादान्तं न्यसेद्व्यापक मुत्तमम् ॥38॥
नित्यन्यास इति प्रोक्तः सर्व एव सुखावहः ।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि भैरवाकार-दायकम् ॥39॥
हिमालयगिरे-र्मध्ये नगरे भैरवस्य च ।
दिव्यस्थाने महापीठे मणिमण्डप-राजिते ॥40॥
नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैः संसेवित-पदाम्बुजाम् ।
तत्र ध्यायन्महाकालीमाद्यां भैरव वन्दिताम् ॥41॥
नीलेन्दीवर-वर्णिनीं युग्मापीन-तुङ्गस्तनीम् ।
सुप्तश्रीहरिपीठ राजितवतीं भीमां त्रिनेत्रां शिवाम् ।
मुद्रा-खड्गकरां वराभययुतां चित्राम्बरोद्दीपनीम् ।
वन्दे चञ्चल-चन्द्रकान्त-मणिभि-र्मालां दधानां पराम् ॥42॥

णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः – दक्षिण उरु में । मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमः – वाम उरु में ॥37॥

इसके साथ मूल बीज का उच्चारण कर, पाँच बार अथवा सात बार न्यास करें । मस्तक से पाद देश पर्यन्त उत्तम रूप से व्यापक न्यास करना चाहिए ॥38॥

इस प्रकार नित्यन्यास को बताया गया, जो समस्त साधकों के लिए ही सुखप्रद है । अब मैं ध्यान का वर्णन करूँगा, जिसके द्वारा भैरव का आकार प्राप्त होता है ॥39॥

हिमालय पर, पर्वतशृंग पर अथवा भैरव के नगर में अर्थात् वाराणसी प्रभृति स्थानों में, दिव्य स्थान में, मणिमण्डप के द्वारा शोभित महापीठ में, नारद प्रभृति मुनियों के द्वारा जिनका चरणकमल सेवित है एवं भैरववन्दित आद्या महाकाली का नित्य ध्यान करें ॥40-41॥

जिनका वर्ण नील इन्दीवर के समान है, जिनके पयोधर युगल अति उन्नत हैं, जो सुप्त श्रीहरि के शयन (शय्या-रूप) शेषनाग के समान शोभायमान है । अतः (जो) अति भयंकर फिर भी शिवस्वरूप एवं त्रिनेत्रा हैं, जिसके हस्त में मुद्रा एवं खड्ग है, जो वराभय-प्रदायिनी हैं एवं जो चित्राम्बर के द्वारा उद्दीपनी हैं, जो चञ्चल चन्द्रकान्तमणि के द्वारा रचित माला को धारण की हुई हैं, उनकी हम सतत् वन्दना करते हैं ॥42॥

ध्यानान्तरं प्रवक्ष्यामि शृणु गौरि गिरेः सुते ।
तत्र पीठे महादेवीं कालीं दानव-सेविताम् ॥43॥
मेघाङ्गी विगताम्बरां शव-शिवारूढां त्रिनेत्रां पराम् ।
कर्णालम्बित-वाणयुग्म-लसितां मुण्डावली-मण्डिताम् ॥44॥
वामाधोर्ध्व-कराम्बुजे नरः शिरः खड्गञ्च सव्येतरे ।
दानाभीति-विमुक्त-केश-निचया ध्योया सदा कालिका ॥45॥
अपरञ्च प्रवक्ष्यामि ध्यानं परमदुर्लभम् ।
कालीं करालवदनां घोरद्रंष्ट्रां त्रिलोचनाम् ।
स्मरेच्छव-कर-श्रेणि-कृत-काञ्चीं दिगम्बराम् ॥46॥
वीरासन समासीनां महाकालोपरि-स्थिताम् ।
श्रुतिमूल-समाकीर्ण सृक्वणीं घोरनादिनीम् ॥47॥
मुण्डमाला-गलद्रक्त-चर्चितां पीवर-स्तनीम् ।
मदिरामोदिता-स्फाल-कम्पिताखिल-मेदिनीम् ॥48॥

हे हिमालय-दुहिता गौरि ! अब और एक (अन्य) ध्यान का वर्णन करूँगा, उसे श्रवण करें । जो दानवों के द्वारा सेविता हैं, ऐसी महादेवी काली हैं ।।43।।

जिनका अङ्ग मेघ के समान है, जो दिगम्बरी हैं, जो शवरूप शिविका पर आरूढ़ा हैं, जो तीन नयनों से युक्ता हैं, जिनका कर्ण लम्बायमान बाणयुग्म के द्वारा शोभित है एवं जो मुण्डावली के द्वारा मण्डित हैं ।।44।।

जिनके वाम करकमल के ऊर्ध्वभाग एवं अधोभाग में नरमुण्ड हैं एवं दक्षिण हस्त में खड्ग सुशोभित है । जिनकी केशराशि विमुक्त हैं – एवंविध कालिकादेवी का सतत ध्यान करें ।।45।।

एक ध्यान का वर्णन कर रहा हूँ, जो जगत् में अति दुर्लभ है । जो करालवदना, त्रिलोचना, घोरद्रष्ट्रा, शव के कर-पंक्तियों के द्वारा जिन्होंने रशना बनायीं है एवं जो दिगम्बरी हैं – एवं विध काली का नित्य स्मरण करें ।।46।।

जो महाकाली के ऊपर वीरासन में समासीन हैं, जिनकी सृक्णी (ओष्ठ का प्रान्तभाग) कर्णमूल पर्यन्त विस्तृत हैं एवं जो घोर नाद करती रहती हैं ।।47।।

जो मुण्डमाला से च्युत रक्त (खून) के द्वारा चर्चित हैं, जिनका स्तन पीवर (स्थूल) हैं, जो मदिरापान करने से मत्त होकर समग्र मेदिनी को कम्पित करती हैं ।।48।।

वामे खड्गं छिन्नमुण्डं धारिणीं दक्षिणे करे ।
वराभययुतां घोर-वदनां लोल-जिह्विकाम् ॥49॥
शकुन्तपक्ष-संयुक्त-वाणकर्ण-विभूषिताम् ।
शिवाभि-र्घोररावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ॥50॥
चण्डहास-चण्डनाद-चण्डाख्यानैश्च भैरवैः ।
गृहीत्वा नरकङ्कालं जयशब्द-परायणैः ॥51॥
सेविताखिल-सिद्धौधैर्मुनिभिः सेवितां पराम् ।
एषामन्यतमं ध्यानं कृत्वा च साधकोत्तमः ॥52॥
मानसैरूपचारैश्च सोऽहमात्मानमर्चयेत् ।
ततो देवीं समभ्यर्च्य अर्घ्यद्वयं निवेदयेत् ॥53॥
दश-पञ्चार-पद्मेषु पीठपूजां समाचरेत् ।
तत्राबाह्य महादेवीं नियमेन समाहितः ।
ततो ध्यायेन्महादेवीं कालिकां कुलभूषणम् ॥54॥
महाकालं यजेत् यत्नात् पीठशक्तिं ततो यजेत् ॥55॥

जो वाम हस्त में खड्ग एवं दक्षिण हस्त में छिन्न मुण्ड को धारण की हुई हैं, जो वराभय-प्रदायिनी हैं, जो घोरवदना हैं जिनकी जिह्वा चपल हैं – एवं विध काली का ध्यान करें ।।49।।

जिनके कर्ण पक्षी के पंख-युक्त बाण के द्वारा भूषित हैं, जो आगत प्रलय के समान घोर-ख-कारी शिवागणों के द्वारा सेविता हैं ।।50।।

जो प्रचण्ड, हास्य, प्रचण्ड नाद एवं प्रचण्ड कलरव के द्वारा जय-शब्द-परायण हैं, भैरवगण जिनके समीप नरकङ्काल को धारण किये हुए हैं ।।51।।

जो सम्पूर्ण सिद्धों एवं मुनियों के द्वारा सेविता हैं – एतादृश काली का ध्यान करें । साधकोत्तम उपर्युक्त किसी भी एक ध्यान को कर, मानस उपचारों के द्वारा 'सोऽहम्' उल्लेखपूर्वक (= उच्चारण पूर्वक) आत्मा की अर्चना करें । इसके बाद, देवी की पूजा का समापन कर दो अर्घ्यों का निवेदन करें ।।52-53।।

दशदलपद्म में (मणिपूर में) पूजा करके पीठ पूजा करें । वहाँ पर देवी का आवाहन कर, नियमपूर्वक समाहित होकर कौलिकों के भूषण-स्वरूपा महादेवी कालिका का ध्यान करें ।।54।।

पहले महाकाल का याग (पूजा) करके, बाद में पीठ स्थिता शक्ति की पूजा यत्न पूर्वक करें ।।55।।

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ।
विप्रचित्तां तथा चैव बहिः षट्कोणके पुनः ॥56॥
उग्रामुग्र-प्रभां दीप्तां तत्र त्रिकोणके पुनः ।
नीलां घनां वकालाञ्च तथा पर-त्रिकोणके ॥57॥
मात्रां मुद्रां नित्याञ्चैव तथैवान्तस्त्रिकोणके ।
शर्वा श्यामा असिकरा मुण्डमाला-विभूषणा ॥58॥
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्ती शुचिस्मिता ।
ब्राह्म्याद्यास्तथा बाह्ये यजेत् पूर्वदल-क्रमात् ॥59॥
ब्राह्मी नारायणी चैव तथैव च महेश्वरि ।
चामुण्डापि च कौमारी तथा चैवापराजिता ॥60॥
बाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ।
सर्वासामपि दातव्या बलिः पूजा तथैव च ॥61॥
अनुलेपनकं गन्धं धूपदीपौ च पानकम् ।
त्रिस्त्रिः पूजा च कर्त्तव्या सर्वासामपि साधकैः ॥62॥

काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला एवं विरोधिनी – विविध प्रकृष्ट चित्त युक्ता काली की बहिःपूजा करने के बाद पुनः षट्कोण में (स्वाधिष्ठान में) पूजा करें ॥56॥

स्वाधिष्ठान में पूजा करने के बाद पुनः त्रिकोण में अर्थात् मूलाधार में उग्रप्रभा, दीप्ता एवं उग्रमूर्त्ति कालिका की अर्चना करें । पुनः पर-त्रिकोण में नील एवं घन (= मेघपंक्ति) वलाकारुपिणी की पूजा का समापन कर, अन्तःत्रिकोण में मुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक ध्यान करें । (त्रिकोण, परत्रिकोण एवं अन्तःत्रिकोण – इस प्रकार त्रिकोण का भी तीन भेद किया गया है) । ध्यान (इस प्रकार है –) शर्वा, श्यामा, जिनके कर में असि है, जिनके गले में मुण्डमाला विभूषित है ॥57-58॥

वामहस्त के द्वरा जो तर्जनी को धारण की हुई हैं एवं शुभ्रस्मिता हैं – ऐसी ब्राह्मी प्रभृति देवियों की बाह्यपूजा, पूर्वदलों के क्रम के अनुसार करें ॥59॥

ब्राह्मी, नारायणी, महेश्वरी प्रभृति की पूजा करें । चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, बाराही एवं नारसिंही की भी उसी प्रकार पूजा करें । समस्त देवियों की पूजा बलि प्रदान करके करें ॥60-61॥

अनुलेपन, गन्ध, धूप, दीप एवं पान – इन वस्तुओं को उपहृत करें (= उपहार में दें) । पूर्वोक्त समस्त देवियों को ही तीन-तीन बार पूजा करना साधक का कर्त्तव्य है ॥62॥

पुनर्गन्धादिभिः पूज्य जप्त्वा शेषं समर्पयेत् ।
समयं चार्चयेत् देव्या योगिनी-योगिभिः सह ॥63॥
मधु मांसं तथा मत्स्यं यत् किञ्चित कुलसाधनम् ।
शाक्त्यै दत्त्वा ततः पश्चात् गुरवे विनिवेदयेत् ॥64॥
तदनुज्ञां मूर्द्धिर्ण कृत्वा शेषं चात्मनि योजयेत् ।
मधु मांसं विना यस्तु कुलपूजां समाचरेत् ।
जन्मान्तर-सहस्रस्य सुकृतिस्तस्य नश्यति ॥65॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मकार-पञ्चकैर्यजेत् ।
मधुना न विना मन्त्रं न मन्त्रेण विना मधु ।
परस्पर-विरोधेन कथं सिध्यन्ति साधकाः ॥66॥
कुण्ड-कुम्भ-कपालादि-पदार्थानां निषेवनम् ।
सौरे तन्त्रे विरुद्धञ्च शैवे शाक्ते महाफलम् ॥67॥
ब्रह्माण्ड-खण्ड-संभूत-मशेष-रत्न-सम्भवम् ।
श्वेतं पीतं सुगन्धिञ्च निर्मलं भूरि-तेजसम् ॥68॥

पुनः गन्ध प्रभृति के द्वारा पूजा करके यथाशक्ति जप करें एवं अन्त में जप समर्पण करें । योगी के साथ योगिनी देवी की कुल के अनुसार पूजा करें ।।63।।

मधु (मद्य), मांस, मत्स्य प्रभृति जो-जो कुल-साधन हैं अर्थात् कुलाचारी सम्प्रदाय के अनुसार 'उपचार' हैं, उनके द्वारा पूजा करें । पहले शक्ति को निवेदन करके फिर गुरु को निवेदन करें ।।64।।

उसके बाद उनके आदेश को शिरोधार्य कर स्वयं प्रसाद का ग्रहण करें । मद्य-मांस के विना जो साधक कुल-पूजा का अनुष्ठान करता है, उसके सहस्र जन्तान्तरों से सञ्चित सुकृतियाँ भी विनाश को प्राप्त हो जाती हैं ।।65।।

इसीलिए सभी प्रकार से यत्नपूर्वक म-कार पंचक (= मत्स्य, मुद्रा, मांस, मद्य एवं मैथुन) के द्वारा पूजा करें । मद्य के बिना मन्त्र एवं मन्त्र के बिना मद्य – परस्पर वियुक्त (= अलग-अलग) होने पर साधक की मन्त्रसिद्धि किस प्रकार सम्भव हो सकती है ?।।66।।

कुण्ड, कुम्भ, कपाल प्रभृति का सेवन करना सौरतन्त्र में विरुद्ध होने पर भी शैव एवं शाक्त तन्त्र में उनका व्यवहार करने पर महाफल का लाभ होता है ।।67।।

ब्रह्माण्ड-खण्ड-सम्भूत अशेष रत्नजात, श्वेत, पीत, सुगन्धि, निर्मल एवं प्रभूत तेजयुक्त इस कुम्भ के मध्य में अर्थात् शरीर के ऊर्ध्वदेश में, सहस्रार में,

अथवा कुम्भमध्येऽस्मिन् स्रवन्तं परमामृतम् ।
अन्तर्लयो बहिर्मध्ये त्रिकोणोदर-वर्त्तिनि ॥69॥

तद्बाह्यं स्फाटिकोदार-मणिचन्द्रञ्च मण्डलम् ।
तेनामृतेन तद्बाह्ये चिन्तयेत् परमामृतम् ॥70॥

आरम्भस्तरुणः प्रौढ़स्तदन्ते तु न्यासः पुनः ।
एभिरुल्लासवान् योगी स्वयं शिवमयो यतः ॥71॥

सर्वशेषे च देवेशि सामान्यार्घ्यं पदेऽर्पयेत् ।
विशेषार्घ्यं शिरे दत्त्वा देव्याः प्रियतमो भवेत् ॥72॥

साङ्गक्रिया पदे दत्त्वा सामान्यार्घ्यं शिरे भवेत् ।
इत्युक्त्वा स परामयी-शक्तितोषण-कारकः ॥73॥

भोगेन लभते मोक्षं बहुना जल्पितेन किम् ।
नियमः पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन ॥74॥

परमामृत सर्वदा च्युत हो रहा है एवं सहस्रार में ही वर्तमान जो त्रिकोण है, उसके मध्य में जो परमामृत है वह च्युत हो रहा है – इस प्रकार ध्यान करने पर अन्तर्लय हो जाता है ॥68-69॥

स्फटिक के समान स्वच्छ मणिखचित पात्र में स्थित जो वाह्य अमृत है, उस अमृत के द्वारा ही परमामृत का चिन्तन करें ॥70॥

आरम्भ, तरुण एवं प्रौढ़ – उसके बाद न्यास करें । एवं विध अनुष्ठान के द्वारा जिस उल्लास की प्राप्ति होती है, उससे साधक योगी साक्षात् शिव में परिणत हो जाता है ॥71॥

हे देवेशि ! सबके अन्त में शक्ति के चरणों में सामान्य अर्घ्य को अर्पण करना चाहिए । मस्तक पर विशेषार्घ्य को अर्पण करने पर, देवी का प्रियतम बना जा सकता है ॥72॥

साङ्गक्रिया को चरणों में अर्पित करने के बाद मस्तक पर सामान्यार्घ्य देना चाहिए । पराशक्ति के तोषणकारी शिव ने इस प्रकार कहकर पुनः कहने लगे कि – भोग के द्वारा ही मोक्ष-लाभ हो सकता है – इस सम्बन्ध में अधिक बोलने की आवश्यकता ही क्या है ? जो कुछ नियम हैं, उन्हें पुरुषों के विषय में ही समझना चाहिए, महिला के क्षेत्र में कोई नियम नहीं है ॥73-74॥

यद्वा तद्वा येन केन सर्वदा सर्वतोऽपि च।
योषितां ध्यानयोगेन शुद्धशेषं न संशयः ॥75॥
बालाम्बा यौवनोन्मत्तां वृद्धाम्बा युवतीं तथा।
कुत्सिताम्बा महादुष्टां नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥76॥
तासां प्रहारो निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियं तथा।
सर्वथा न च कर्त्तव्यं अन्यथा सिद्धि-रोध-कृत् ॥77॥
इति ते कथितं शेषमाचरेत् लक्षणं प्रिये।
नित्यपूजाक्रमं भक्त्या ज्ञात्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥78॥

इति दक्षिणाम्नाये कङ्कालमालिनीतन्त्रे सार्द्धलक्षग्रन्थे महाकाली-मन्त्रपूजा-कथनं नाम चतुर्थः पटलः ॥4॥

वे (= महिलाएँ) जिस किसी भी प्रकार से सर्वदा ही सर्वक्षेत्र में ध्यान कर सकतीं हैं। ध्यान-योग के द्वारा महिलाएँ विशुद्ध हो जातीं हैं – इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥75॥

बालिका, यौवनोन्मत्ता युवती, वृद्धा, कुत्सिता अथवा महादुष्टा – जिस किसी भी प्रकार की महिला क्यों न हो, उन्हें नमस्कार करके (उनका) विसर्जन दें ॥76॥

महिलाओं को प्रहार करना, उनके प्रति कुटिल आचरण करना एवं किसी भी प्रकार का अप्रिय आचरण किये जाने का सर्वथा त्याग करना चाहिए। अन्यथा (वह व्यवहार) साधक की सिद्धि में प्रतिबन्धकता की सृष्टि करता है ॥77॥

हे प्रिये ! महाकाली के मन्त्रसाधन को मैंने बताया है। पूर्वोक्त नित्यपूजा के क्रम को भक्तिपूर्वक जानकर, (उसका) आचरण करने पर, सिद्धि-प्राप्ति होती है ॥78॥

दक्षिणाम्नाय में कङ्कालमालिनीतन्त्र में सार्द्धलक्ष-ग्रन्थ में महाकाली-मन्त्र-पूजा-कथन नामक चतुर्थ पटल समाप्त ॥4॥

पञ्चमः पटलः

(पुरश्चरणविधि कथनम्)

श्रीपार्वत्युवाच —

कथयस्व महाभाग पुरश्चरणमुत्तमम् ।
कस्मिन् काले च कर्त्तव्यं कलौ सिद्धिदमद्भुतम् ॥1॥

श्रीईश्वर उवाच —

सामान्यतः प्रवक्ष्यामि पुरश्चर्याविधिं शृणु ।
नाशुभो विद्यते कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ॥2॥
न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ।
कालाकालं महेशानि भ्रान्तिमात्रं न संशयः ॥3॥
प्रलये महति प्राप्ते सर्वं गच्छति ब्रह्मणि ।
तत्काले च महाभीमे को गच्छति शुभाशुभम् ॥4॥

(पुरश्चरण-विधि-कथन)

श्रीपार्वती ने कहा — हे महाभाग ! सम्प्रति पुरश्चरण के विषय में मुझे बतावें । जो (पुरश्चरण) कलिकाल में अद्भुत सिद्धिप्रद है । उसका अनुष्ठान किस समय करना चाहिए ।।1।।

श्रीमहादेव ने कहा — साधारण रूप से पुरश्चरण की विधि को बता रहा हूँ, श्रवण करें । इसके अनुष्ठान के लिए कोई भी समय अशुभ नहीं है एवं कोई स्थान भी अशुभ नहीं है ।।2।।

दिन में एवं रात्रि में कोई विशेषता (= भिन्नता) नहीं है और महानिशि में अथवा सन्ध्या में भी उसके अनुष्ठान में कोई विशेषता नहीं देखी जाती । हे महेशानि ! अनुष्ठान के लिए समय या असमय (का कथन) सभी भ्रान्ति-मात्र है ।।3।।

महाप्रलय अपने पर समस्त वस्तु ही ब्रह्म में लीन हो जाती है । हे महाभीम ! उस काल को प्राप्त होने पर शुभ या अशुभ कहाँ रह जायगा ? ।।4।।

कलिकाले महामाये भवन्त्यल्पायुषो जनाः ।
अनिर्दिष्टायुषः सर्वे कालचिन्ता कथं प्रिये ॥5॥
यत्कालं ब्रह्मचिन्तायां तत्कालं सफलं प्रिये ।
पुरश्चर्याविधौ देवि कालचिन्तां न चाचरेत् ॥6॥
नात्र शुद्ध्याद्यपेक्षास्ति न निषिद्ध्यादि भूषणम् ।
दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादि नियमो न हि ॥7॥
न जपेत् कालनियमो नार्चादिष्वपि सुन्दरि ।
स्वेच्छाचारोऽत्र नियमो महामन्त्रस्य साधने ॥8॥
नाधर्मो विद्यते सुभ्रु प्रचरेत् दुष्टमानसः ।
जम्बुद्वीपे च वर्षे च कलौ भारत संज्ञके ॥9॥
षण्मासादपि गिरिजे जपात् सिद्धिर्न संशयः ।
मन्त्रोक्तं सर्वतन्त्रेषु तदद्य कथयामि ते ॥10॥

हे महामाये ! कलिकाल में मानव अल्पायु होता है । समस्त प्राणी ही अनिर्दिष्टायु हैं अर्थात् किसी के भी आयु का कोई निर्दिष्टकाल नहीं है । अतः हे प्रिये ! कालविषयक चिन्तन कैसा ? ।।5।।

जिस काल में ब्रह्म-चिन्तन हो सकता है, वह काल ही फलदायक (= सार्थक) है । हे देवि ! पुरश्चरण-विधि में किसी प्रकार कालचिन्तन करना उचित नहीं है ।।6।।

इस विषय में किसी प्रकार की शुद्धि प्रभृति की अपेक्षा नहीं है और निषिद्ध्यादि भूषण भी नहीं है । इसमें दिक्-काल का किसी प्रकार का नियम नहीं है और स्थिति अर्थात् स्थान का भी कोई नियम नहीं है ।।7।।

हे सुन्दरि ! जप में जिस प्रकार कोई काल-नियम नहीं है, उसी प्रकार पूजा में भी काल का कोई नियम नहीं है । उस महामन्त्र के साधन में स्वेच्छाचार ही नियम है ।।8।।

हे सुभ्रु ! जम्बुद्वीप में भारत नामक वर्ष में, कलिकाल में कोई अधर्म नहीं है । केवल दुष्ट मन में ही (विविध नियम) बनते रहते हैं ।।9।।

हे गिरिजाया ! छःमहीनों में ही जप के द्वारा सिद्धि-लाभ होता है – इसमें कोई सन्देह नहीं है । समस्त तन्त्रों में जो मन्त्र बताये गये हैं, उन्हें आज आपको बताऊँगा ।।10।।

सुभगे शृणु चार्वङ्गि कल्याणि कमलेक्षणे ।
कलौ च भारते वर्षे येन सिद्धिः प्रजायते ॥11॥
तत् सर्वं कथयाम्यद्य सावधानावधारय ।
कलिकाले वरारोहे जपमात्रं प्रशस्यते ॥12॥
न तिथिर्न व्रतं होमं स्नानं सन्ध्या प्रशस्यते ।
पुरश्चर्यां विना देवि कलौ मन्त्रं न साधयेत् ॥13॥
सत्यत्रेतायुगं देवि द्वापरं सुखसाधनम् ।
कलिकाले दुराधर्षं सर्वदुःखमयं सदा ॥14॥
सारं हि सर्वतन्त्राणां महाकालीषु कथ्यते ।
प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा ततः स्नानं समाचरेत् ॥15॥
कृत्वा सन्ध्यां तर्पणञ्च संक्षेपेण वरानने ।
पूजां चैव वरारोहे यस्य यत् पटलक्रमात् ॥16॥

हे सुभगे, पद्मलाचने, चार्वाङ्गि ! कल्याणि ! इस कलिकाल में भारतवर्ष में जिसप्रकार से सिद्धि-प्राप्त होती है,आज आपको उन सभी साधनाओं को (= के विषय में) बताऊँगा । सावधान होकर श्रवण करें । हे वरारोहे ! कलिकाल में केवल जपमात्र ही प्रशंसनीय है ।।11-12।।

तिथि, व्रत, होम, स्नान, सन्ध्या प्रभृति के द्वारा विशेष कोई लाभ नहीं होता है । हे देवि ! पुरश्चरण के अनुष्ठान के विना कलिकाल में कोई मन्त्र-साधना नहीं करनी चाहिए ।।13।।

हे देवि ! सत्य, त्रेता एवं द्वापरयुग – ये सभी युग सुखसाधन हैं अर्थात् सत्ययुग, त्रेतायुग एवं द्वापरयुग में सुखपूर्वक साधना की जाती है – इन युगों में साधना कोई कष्टसाध्य नहीं है । किन्तु कलियुग में साधना अत्यन्त दुःखमय एवं कष्टसाध्य है ।।14।।

महाकाली की साधना में समस्त तन्त्रों के सार को बताया जा रहा है । प्रातःकाल प्रातःकृत्यादि कार्यों को कर, स्नान करें ।।15।।

हे वरानने ! बाद में संक्षेप में सन्ध्या एवं तर्पण को पूरा कर, पूर्वोक्त पटल में जिनकी पूजा को जिस क्रम में बताया गया है, उसी क्रम में पूजा समापन करें ।।16।।

पूजाद्वारे च विन्यस्य वलिं दद्यात् यथाक्रमम् ।
प्राणायामत्रयञ्चैव माषभक्तवलिं तथा ॥17॥
संकल्पोपास्य देवेशि बलिदानस्य साधकः ।
आदौ गणपतेर्बीजं गमित्येकाक्षरं विदुः ॥18॥
भूमौ विलिख्य गुप्तेन वलिं पिण्डोपमं ततः ॥19॥
ॐ गं गणपतये स्वाहा इति मन्त्रेण साधकः ।
वलिमित्थञ्च सर्वत्र बीजोपरि प्रदापयेत् ॥20॥
ॐ भैरवाय ततः स्वाहा भैरवाय वलिन्ततः ।
ॐ क्षं क्षेत्रपालाय स्वाहा क्षेत्रपाल-बलिं ततः ॥21॥
ॐ यां योगिनीभ्यो नमः स्वाहा च योगिनी-बलिम् ।
संपूज्य विधिना दद्यात् पूर्ववत् क्रमतो वलिम् ॥22॥
कथोपकथनं देवि त्यजेदत्र सुरालये ॥23॥

पूजा-द्वार में यथाक्रम से बलिदान दें । उसके बाद, तीन वार प्राणायाम करके माषभक्त अर्थात् माष (उड़द) के दाल की खिचड़ी इष्टदेवी को उपहार देने के लिए प्रस्तुत करें ।।17।।

हे देवेशि ! साधक पूर्वोक्त बलिदान प्रदान करने के उद्देश्य से संकल्प करके, प्रथमतः 'गं' – इस एकाक्षर गणेश के बीज को लिखें – ऐसा (नियम) तन्त्रविद्गण जानते हैं ।।18।।

भूमि पर उस एकाक्षर गणपति के बीजमन्त्र को उपांशुरूप से लिखें । उसके बाद साधक उस माष (उड़द)-युक्त भात को पिण्ड के आकार में परिणत करें ।।19।।

साधक 'ॐ गं गणपतये स्वाहा' इस मन्त्र का उच्चारण कर, पूर्वोक्त भूमि पर लिखित बीज के ऊपर पिण्डाकार में परिणत बलि को प्रदान करें ।।20।।

इसके बाद भैरव, क्षेत्रपाल एवं योगिनी के उद्देश्य से यथाक्रम से 'ॐ भैरवाय नमः' इस मन्त्र के द्वारा भैरव के उद्देश्य से बलि दें । 'ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः' – इस मन्त्र के द्वारा क्षेत्रपाल के उद्देश्य से एवं 'ॐ यां योगिनीभ्यो नमः स्वाहा' – इस मन्त्र के द्वारा योगिनी के उद्देश्य से एक-एक बलि दें । विधिपूर्वक प्रत्येक की पूजा कर, पूर्व की ही तरह क्रमशः बलिदान दें । हे देवि ! इस देवालय में कदापि कथोपकथन न करें ।।21-23।।

पूर्वे गणपतेर्भद्रे उत्तरे भैरवाय च ।
पश्चिमे क्षेत्रपालाय योगिन्यै दक्षिणे ददेत् ॥24॥
इन्द्रादिभ्यो बलिं दद्यात् आत्मकल्याणहेतवे ।
तदा सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा हास्य-केवलम् ॥25॥
पलैकं माषकल्पञ्च पलमेकञ्च तण्डुलम् ।
अर्द्धतोलं घृतञ्चैव दधिमर्द्धार्द्धतोलकम् ॥26॥
शर्करैक-तोलकेन बलिं दद्यात् सुसिद्धये ।
एतेषां सहयोगेन बलिर्भवति शाम्भवि ॥27॥
पूजास्थाने तथा भद्रे कूर्मबीजं लिखेत्ततः ।
चन्द्रविन्दुमयं वीजं कूर्मबीजं इतीरितम् ॥28॥
स्थापयेदासनं तत्र पूजयेत् पटलक्रमात् ।
भूतशुद्धं ततः कृत्वा प्राणायामं ततः परम् ॥29॥
अङ्गन्यासं करन्यासं मातृकान्यासमेव च ।
यः कुर्यान्मातृकान्यासं स शिवो नात्र संशयः ॥30॥

हे भद्रे ! पूर्वदिशा में गणपति के, उत्तर दिशा में भैरव के, पश्चिम दिशा में क्षेत्रपाल के एवं दक्षिण दिशा में योगिनी के उद्देश्य से पूर्वोक्त बलि को प्रदान करें ॥24॥

अपनी कल्याण की कामना से इन्द्र प्रभृति के उद्देश्य से भी बलि प्रदान करें । इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा एवं बलि प्रदान करने पर ही सिद्धि-प्राप्ति हो जाती है । अन्यथा केवल हास्यास्पद ही बनना पड़ेगा ॥25॥

एक पल-परिमिति माष (उड़द), एक पल-परिमित तण्डुल, अर्ध तोला - परिमित घृत एवं एक-चौथाई तोला-परिमित दधि तथा उत्कृष्ट सिद्धि के लिए उसमें एक तोला-परिमित शर्करा मिलावें । हे शाम्भवि ! उपरि उक्त द्रव्यों के मिलन से जो बलि-द्रव्य प्रस्तुत होती है, उसके द्वारा (= उस द्रव्य से) बलि प्रदान करें ॥26-27॥

हे भद्रे ! अब पूजा के स्थान में कूर्मबीज को लिखें । केवल चन्द्रबिन्दु को ही 'कूर्मबीज' कहा जाता है ॥28॥

उस स्थल पर आसन बिछाकर पूर्वोक्त पटलक्रम से पूजा करें । प्रथमतः भूतशुद्धि करके बाद में प्राणायाम करें ॥29॥

अङ्गन्यास, करन्यास एवं मातृकान्यास को यथाक्रम से करना चाहिए । जो मातृका-न्यास करते हैं, वह साक्षात् शिव हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥30॥

ततस्तु भस्मतिलकं रुद्राक्षं धारयेत्ततः ।
रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं भस्मनश्च शृणु प्रिये ॥31॥

आग्नेयमुच्यते भस्म दुग्ध-गोमय-सम्भवम् ।
शोधयेन्मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं जपन् ॥32॥

शिरोदेशे ललाटे च स्कन्धयोर्भ्रू-प्रदेशके ।
बाह्वो पार्श्वद्वये देवि कण्ठदेशे हृदि प्रिये ।
श्रुतियुग्मे पृष्ठदेशे नाभौ तुण्डे महेश्वरि ॥33॥

कर्पूराद्बाहुपर्यन्तं कक्षे ग्रीवासु पार्वती ।
सर्वाङ्गे लेपयेद् देवि किमन्यत् कथयामि ते ॥34॥

मध्यमानामिकाङ्गुल्यङ्गुष्ठेन तिलकं ततः ।
तिलकं तिस्त्ररेखा स्यात् रेखानां नवाधा मतः ।
पृथिव्याग्निस्तथा शक्तिः क्रियाशक्तिर्महेश्वरः ॥35॥

इसके बाद भस्म के तिलक को धारण कर रुद्राक्ष को धारण करें । रुद्राक्ष के एवं भस्म के माहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ, उसका श्रवण करें ॥31॥

दुग्ध एवं गोमय के द्वारा निर्मित भस्म को 'आग्नेय भस्म' कहा जाता है । उस भस्म को अष्टोत्तरशत मूल मन्त्र का जप करके शोधित करें ॥32॥

मस्तक में, ललाट में, स्कन्ध में, भ्रूप्रदेश में, दोनों बाहुओं में, दोनों पार्श्वों में, कण्ठदेश में एवं हृदय में, हे महेश्वरि ! दोनों कर्णों में, पृष्ठदेश में, नाभि में, मुख में, कोहनी से बाहु पर्यन्त एवं कक्षों में, हे पार्वती ! उक्त प्रकार से सर्वाङ्ग में भस्म का लेपन करना विधेय है । इस विषय में मुझे और कुछ नहीं कहना है ॥33-34॥

उसी के साथ-साथ मध्यमा, अनामिका एवं अङ्गुष्ठङ्गुलि के द्वारा तिलक भी करना चाहिए ।

तिलक करना है तो तीन रेखाएँ बनानी चाहिए और नौ रेखाएँ तन्त्रविदों के द्वारा अङ्गीकृत किया जाता है । वह (तिलक) तीन देवों का प्रतीक है – पृथिवी, अग्नि एवं शक्ति अथवा क्रिया, शक्ति, महेश्वर (का प्रतीक है) ॥35॥

देवः प्रथमरेखायां भक्त्या ते परिकीर्त्तितः ।
नभस्वांश्चैव सुभगे द्वितीया चैव देवता ।
परमात्मा शिवो देवस्तृतीयायाश्च देवता ।
एतान्नित्यं नमस्कृत्य त्रिपुण्ड्रं धारयेत् यदि ॥36॥
महेश्वर-व्रतमिदं कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो वा यतिस्तथा ॥37॥
महापातक-संघातैर्मुच्यते सर्वपातकात् ।
तथान्यक्षत्रविट्शूद्रा-स्त्रीहत्यादिषु पातकैः ॥38॥
वीर-ब्राह्मण-हत्याभ्यां मुच्यते सुभगेश्वरि ।
अमन्त्रेणापि यः कुर्यात् ज्ञात्वा च महिमोन्नतिम् ॥39॥
त्रिपुण्ड्र-भाल-तिलको मुच्यते सर्वपातकैः ।
परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्षणम् ॥40॥
परनिन्दा परक्षेत्र-हरणं परपीड़नम् ।
असत्य-वाक्य-पैशुन्यं पारुष्यं देवविक्रयम् ॥41॥

प्रथम रेखा के देवता हैं महादेव । द्वितीय रेखा के देवता हैं नभस्वान् एवं तृतीय रेखा के देवता हैं – परमात्मारूपी शिव । इनको नमस्कार कर त्रिपुण्ड्र को धारण करें ।।36।।

इस महेश्वर-व्रत का अनुष्ठान करने पर (साधक) श्रेष्ठ सिद्ध बन जाता है । (वह साधक) जो कोई भी हो – ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी अथवा सन्यसी ।।37।।

उक्त व्रत का अनुष्ठान करने पर महापातक सङ्घात से मुक्त हो सकता है । (इससे) समस्त प्रकार के पातक से मुक्ति प्राप्त करना सम्भव है । क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं जिस किसी भी (प्रकार की) स्त्री-हत्या प्रभृति पातक से भी मुक्ति प्राप्ति हो सकती है ।।38।।

हे सुभगेश्वरि ! भस्मधारण की महिमा को जानकर, मन्त्रोच्चारण किये बिना भी जो व्यक्ति भस्म को धारण करता है, उसे वीर एवं ब्राह्मण-हत्या (के पाप) से भी मुक्ति-प्राप्ति हो सकती है ।।39।।

जिसके ललाट पर त्रिपुण्ड्रतिलक शोभित है, वे सभी प्रकार के पातक से मुक्त हो जाते हैं । यहाँ तक कि – दूसरे के द्रव्य का अपहरण एवं परस्त्रीगमनजनित पाप से भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।।40।।

दूसरों की निन्दा, दूसरे के क्षेत्र का हरण, पर-पीड़न, असत्य एवं कठोर वाग्व्यवहार, पिशुनता एवं देव-विक्रय ।।41।।

कूटसाक्ष्यं व्रतत्यागं कैतवं नीचसेवनम् ।
गो-मृगाणां हिरण्यस्य तिल-कम्बल-वाससाम् ॥42॥
अन्न-धान्य-कुशादीनां नीचेभ्योऽपि परिग्रहम् ।
दासीवेश्यासु कृष्णासु वृषलीसु नटीसु च ॥43॥
रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च सङ्गमे ।
मांस-चर्म-रसादीनां लवणस्य च विक्रयम् ॥44॥
एवं रूपाण्यसंख्यानि पापानि विविधानि च ।
सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ॥45॥
शिव-द्रव्यापहरणात् शिवनिन्दाञ्च कुत्रचित् ।
निन्दायाः शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ॥46॥
त्रिपुण्ड्रं शिरसा धृत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ।
देव-द्रव्यापहरणे ब्रह्मस्व-हरणेन च ॥47॥
कुलान्यग्नय एवात्र विनश्यन्ति सदाशिवे ।
महादेवि महाभागे ब्राह्मणातिक्रमेण च ।
कुलरक्षा भवत्यस्मात् त्रिपुण्ड्रस्य च सेवनात् ॥48॥

कूटसाक्ष्य, व्रतत्याग, खलता, नीच व्यक्ति की सेवा, गो, मृग, सुवर्ण, तिल, कम्बल एवं वस्त्र, अन्न, धान्य एवं कुश प्रभृति के दान का निम्नस्तर के व्यक्ति से ग्रहण करना; दासी, वेश्या, कृष्णा, वृषली, नटी, रजस्वला कन्या एवं विधवा के साथ संगम; मांस, चर्म, रस प्रभृति का एवं लवण का विक्रय – इन समस्त पाप से भी मुक्ति लाभ होता है ।।42-44।।

इस प्रकार समस्त प्रकार के असंख्य, विविध पाप, त्रिपुण्ड्र-धारण के द्वारा विनाश को प्राप्त हो जाता है । शिव-द्रव्यापहरण अथवा किसी स्थल पर शिवनिन्दा का आचरण या शिव-भक्त की निन्दा करने से जो पाप होता है, वह प्रायश्चित्त करने पर भी विनष्ट नहीं होता है ।।45-46।।

देवता के द्रव्यों का अपहरण एवं ब्रह्मस्व-हरण करने से जो पाप उत्पन्न होता है, वह (पाप) मस्तक पर त्रिपुण्ड्र धारण करने के साथ ही साथ विनष्ट हो जाता है ।।47।।

हे सदाशिवे ! हे महादेवि ! हे महाभागे ! ब्राह्मणों का अपमान करने पर इस जन्म में ही अपमानकारी का वंश विनाश को प्राप्त हो जाता है, किन्तु त्रिपुण्ड्र

रुद्राक्षं यस्य देहेषु ललाटेषु त्रिपुण्ड्रकम् ।
यदि स्यात् स च चाण्डालः सर्व-वर्णोत्तमत्तमः ॥49॥
यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् गङ्गाद्या सरितश्च याः ।
स्नातो भवति सर्वत्र यल्ललाटे त्रिपुण्ड्रकम् ॥50॥
सप्त-कोटि महामन्त्रा उप-मन्त्रास्तथैव च ।
श्रीविष्णोः कोटि-मन्त्रश्च कोटिमन्त्रः शिवस्य च ।
ते सर्वे तेन जप्ता च यो विभर्त्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥51॥
सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं च जनिष्यताम् ।
स्ववंशजातान् मर्त्त्यानां उद्धरेत् यस्त्रिपुण्ड्रकृत् ॥52॥
षडैश्वर्य-गुणोपेतः प्राप्य दिव्य-वपुस्ततः ।
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्री-शतसेवितः ॥53॥
विद्याधराणां सिद्धानां गन्धर्वाणां महौजसाम् ।
इन्द्रादि-लोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् ॥54॥

का धारण करने पर कुल की रक्षा हो जाती है । जिसके शरीर पर रुद्राक्ष एवं ललाट पर त्रिपुण्ड्र रहता है, वह चण्डाल होने पर भी समस्त वर्णों में श्रेष्ठ है ॥48-49॥

जिसके ललाट पर त्रिपुण्ड्र शोभायमान होता है, वह इस मर्त्यलोक में स्थित समस्त तीर्थ एवं गङ्गा प्रभृति पवित्र नदी में किये गये स्नान के तुल्य बन जाता है ॥50॥

जो व्यक्ति ललाट पर त्रिपुण्ड्र का धारण करता है, तो उसे ऐसे फल की प्राप्ति होती है, जितना (फल) श्रीविष्णु के कोटि महामन्त्रों एवं उपमन्त्रों का जप करने पर एवं शिव के भी कोटि महामन्त्रों एवं उपमन्त्रों के जप करने पर प्राप्त होता है ॥51॥

साधक के पूर्ववर्त्ती सहस्र पुरुष (पीढ़ी), जिन्होंने जन्मग्रहण किया है एवं (साधक के) परवर्ती सहस्र पुरुष (पीढ़ी) जो जन्मग्रहण करेंगे, उन सभी का उद्धार करने में, ललाट पर धृत त्रिपुण्ड्र समर्थ होता है ॥52॥

त्रिपुण्ड्रधारी साधक अणिमा, महिमा, लघिमा, प्रभृति षडैश्वर्यों से युक्त होकर, दिव्य शरीर को धारण कर एवं दिव्य विमान पर आरोहण कर, शत-शत देवाङ्गनाओं के द्वारा सेवित होता है ॥53॥

विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व एवं महातेजस्वी इन्द्र प्रभृति लोकपालों के लोक में यथाक्रम से – ॥54॥

भुक्त्वा भोगान् सुविपुलं प्रदेशानां पुरेषु च ।
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कल्पायुतं वसेत् ॥55॥
विष्णुलोके च रमते आब्रह्मणः शतायुषम् ।
शिवलोकं ततः प्राप्य रमते कालमक्षयम् ॥56॥
शिव-सायुज्यमाप्नोति न स भूयोऽपि जायते ।
शैवे विष्णौ च सौरे च गाणपत्येषु पार्वति ॥57॥
शक्तिरूपा च या गौः स्यात् तस्या गोमय-सम्भवम् ।
भस्म तेषु महेशनि विशिष्टं परिकीर्त्तितम् ॥58॥
शैवोऽपि च वरारोहे सागुण्यं वरवर्णिनि ।
शक्तौ प्रशस्तमोक्षं हि भस्म यौवन-जीवने ॥59॥
अन्येषां गो-करीषेण भस्म शक्त्यादिकेष्वपि ।
सामान्यमेतत् सुश्रोणि विशेषं शृणु मत् प्रिये ॥60॥
करीष-भस्मादनघे हौमं भस्म महाफलम् ।
होम-भस्मात् कोटिगुणं विष्णु-योगं महेश्वरि ॥61॥

यथेच्छ भोगों को प्राप्त कर, अयुत-कल्प पर्यन्त ब्रह्मा के पद पर अधिष्ठित होकर (त्रिपुण्ड्रधारी साधक) वास करते हैं ।।55।।

ब्रह्मा के शतायु पर्यन्त (वह साधक) विष्णु लोक में रमण करते हैं एवं अक्षयकाल पर्यन्त शिवलोक में वास करते हैं ।।56।।

हे पार्वति ! शैव, वैष्णव, सौर अथवा गाणपत्य (साधक) किसी भी सम्प्रदायभुक्त क्यों न हों, वह शिव-सायुज्य को प्राप्त होते हैं । वह पुनः इस संसार में जन्म-ग्रहण नहीं करते हैं ।।57।।

गाभी शक्ति-स्वरूपा हैं । उनसे उत्पन्न गोमय-जात भस्म भी विशिष्ट शक्ति-उत्पादक है । हे महेशानि ! ऐसा तन्त्र में कहा गया है ।।58।।

हे वरवर्णिनि वरारोहे ! शैवगण भी सायुज्य का लाभ करते हैं । शाक्तों के लिए तो भस्म, यौवन एवं जीवन के लिए प्रशस्त मोक्षप्रद है ।।59।।

भस्म-धारण – विशेषतः गोमय के द्वारा निर्मित भस्म, अन्य व्यक्ति के लिए भी हितकारक हैं – ऐसा सामान्य रूप में कहा गया है । हे सुश्रोणि ! मेरी प्रिये ! अब (इसे) विशेष-रूप में बताऊँगा, इसे श्रवण करें ।।60।।

हे अनघे ! करीष अर्थात् गोहरी के भस्म की अपेक्षा वह भस्म, जो होम करने के उपरान्त प्राप्त होता है, (वह) महाफलप्रद है । हे महेश्वरि ! होम भस्म

शिव होमं तद्द्विगुणं तस्मात्तु शृणु सुन्दरि ।
स्वीयेष्ट-देवत-होम-मनन्तं प्रियवादिनि ॥62॥
तन्माहात्म्यमहंवक्तुं वक्त्र-कोटिशतैरपि ।
न समर्थो योगमार्गे किमन्यत् कथयामि ते ॥63॥
होमः कलियुगे देवि जम्बू-द्वीपस्य वर्षके ।
भारताख्ये महाकालि दशांशं क्रमतः शिवे ॥64॥
नास्तिकास्ते महामोहे केवलं होममाचरेत् ।
लक्षम्वाप्ययुतम्वापि सहस्रम्वा वरानने ॥65॥
अष्टाधिक-शतम्वापि काम्यहोमं प्रकल्पयेत् ।
नित्यहोमञ्च कर्त्तव्यं शक्त्या च परमेश्वरि ॥66॥
प्रजपेन्नित्य-पूजायामष्टोत्तर-सहस्रकम् ।
अष्टोत्तरशतं वापि अष्ट-पञ्चाशतं चरेत् ॥67॥

की उपेक्षा भी, वह भस्म, जो विष्णुयांग करने के उपरान्त प्राप्त होती है वह कोटि गुणा अधिक एवं शिव के उद्देश्य से होम करने के उपरान्त जो भस्म प्राप्त होती है, वह पूर्वोक्त भस्म की अपेक्षा दो गुणा अधिक फलप्रद है । हे सुन्दरि ! इसी कारण उसकी प्रक्रिया का श्रवण करें । हे प्रियवादिनि ! अपने इष्टदेवता के उद्देश्य से होम करने पर जो भस्म निर्मित होता है, वह अनन्त फलप्रद है ।।61-62।।

शत कोटि मुखों के द्वारा भी उसके माहात्म्य के वर्णन करने में मैं अक्षम हूँ । योगमार्ग के विषय में (उसके माहात्म्य के विषय में) मैं और अधिक क्या कहूँ ।।63।।

हे देवि ! कलियुग में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत इस भारतवर्ष में, हे महाकालि शिवे ! क्रमशः दशांश फल-लाभ होता है ।।64।।

हे महामोहे ! जो लोग नास्तिक हैं, वे केवल होम का अनुष्ठान करें । हे वरानने ! वह होम लक्ष अयुत अथवा सहस्र भी हो सकता है ।।65।।

किसी कामना के उद्देश्य से जो काम्य होम है, वह अष्टोत्तरशत करने पर भी (ऐसा फललाभ) हो सकता है । हे परमेश्वरि ! शक्ति के अनुसार नित्य होम का अनुष्ठान करना चाहिए ।।66।।

नित्यपूजा के समय अष्टोत्तर सहस्र संख्यक जप करें । उसमें अक्षम होने पर अष्टोत्तरशत, अष्टोत्तर पञ्चाशत्, अष्टत्रिंशत् (38) अथवा अष्टाविंशति (18)

अष्टत्रिंशत्-संख्यकम्वा अष्टाविंशतिमेव च ।
अष्टादश द्वादशञ्च दशाष्टौ च विधानतः ॥68॥
होमञ्चैव महेशानि एतत्संख्या-विधानतः ।
एवं सर्वत्र देवेशि नित्य-कर्म महोत्सवः ॥69॥
इत्थं प्रकारं यत् भस्म अङ्गे संलिप्य साधकः ।
मालाञ्चैव महेशानि नरास्थ्यद्भुत-पूजितम् ॥70॥
गले दद्याद्वरारोहे शक्तश्चेत् दिव्यनासिके ।
रुद्राक्ष-माल्यं संधार्यं ततः शृणु मम प्रिये ॥71॥
एवं कृत्वा तया सार्द्धं पितृ-भूमौ स्थितं मया ।
सुभगे शृणु सुश्रोणि रुद्राक्षं परमं पद ॥72॥
सर्वपाप-क्षयकरं रुद्रांक्षं ब्रह्मणीश्वरि ।
अभुक्तो वापि भुक्तो वा नीचा नीचतरोऽपि वा ॥73॥
रुद्राक्षं धारयेत् यस्तु मुच्यते सर्वपातकात् ।
रुद्राक्षं-धारणं पुण्यं कैवल्य-सदृशं भवेत् ॥74॥

संख्यक जप करें । अष्टादश, द्वादश, दश अथवा न्यूनतम अष्टसंख्यक जप अवश्य ही करें ॥67-68॥

हे महेशानि ! जप की संख्या के अनुसार होम भी करें । हे देवेशि ! इस प्रकार सर्वत्र नित्यकर्म-रूप में महोत्सव का अनुष्ठान करें ॥69॥

उक्त प्रकार से होम करने पर जो भस्म निर्मित होता है, साधक उस भस्म को अपने अङ्गों में लेपन करके माला धारण करें ॥70॥

हे दिव्यनासिके ! सामर्थ्य रहने पर, नरास्थियों की माला को धारण करें । नरास्थि-माला को धारण करने के बाद गले में रुद्राक्ष की माला को भी धारण करें ॥71॥

हे प्रिये ! इस प्रकार माला को धारण कर मैं आपके साथ श्मशान में निवास करता हूँ । हे सुश्रोणि ! हे सुभगे ! साधक के लिए परम पद है - रुद्राक्ष ॥72॥

हे ब्रह्मणीश्वरि ! सभी प्रकार के पापों का क्षयकारी है – रुद्राक्ष । अभुक्त अवस्था में अथवा भुक्त अवस्था में – किसी भी अवस्था में, नीच एवं अतिनीच व्यक्ति भी – ॥73॥

रुद्राक्ष को धारण करने पर सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है । रुद्राक्ष को धारण करना अत्यन्त पुण्य कर्म है, इसे धारण करने पर कैवल्य प्राप्त (व्यक्ति) के सदृश बन जाता है ॥74॥

महाव्रतमिदं पुण्यं त्रिकोटि-तीर्थ-संयुतम् ।
सहस्रं धारयेत् यस्तु रुद्राक्षाणां शुचिस्मिते ॥75॥
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ।
अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश-षोडशः ॥76॥
एकं शिखायां कवचयोर्द्वादश द्वादश क्रमात् ।
द्वात्रिंत् कण्ठदेशे तु चत्वारिंशत् शिरे तथा ॥77॥
उभयोः कर्णयोः षट् षट् हृदि अष्टोत्तरं शतम् ।
यो धारयति रुद्राक्षान् रुद्रवत् स च पूजितः ॥78॥
मुक्ता-प्रवाल-स्फटिकैः सूर्येन्दु-मणि-काञ्चनैः ।
समेतान् धारयेत् यस्तु रुद्राक्षान् शिव एव सः ॥79॥
केवलानपि रुद्राक्षान् यो विभर्त्ति वरानने ।
तं न स्पृशन्ति पापानि तिमिराणीव भास्करः ॥80॥

यह (रुद्राक्ष-धारण) त्रिकोटि तीर्थों में पर्यटन के सदृश महाव्रत है । हे शुचिस्मिते ! जो साधक सहस्र-संख्यक रुद्राक्षों को धारण करता है, उसे देवगण भी नमस्कार करते हैं क्योंकि तब उस (व्यक्ति) में एवं रुद्र में कोई भेद नहीं रह जाता है । सहस्र (रुद्राक्षों) के अभाव में, दोनों बाहुओं में सोलह-सोलहकर (रुद्राक्ष), शिखा में एक (रुद्राक्ष), कवचों में द्वादश-द्वादश (रुद्राक्ष), कण्ठदेश में द्वत्रिंशत् (32 रुद्राक्ष) एवं मस्तक में चत्वारिंशत् (40 रुद्राक्ष) धारण करें ।।75-77।।

दोनों कर्णों में छः छः करके (रुद्राक्ष) एवं हृदय में अष्टोत्तरशत (रुद्राक्ष) धारण करें । जो साधक उक्तसंख्यक रुद्राक्षों को धारण करता है, वह जगत् में रुद्र के समान पूजित होता है ।।78।।

जो व्यक्ति मुक्ता,प्रवाल, स्फटिक, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि अथवा सुवर्ण के द्वारा ग्रथित रुद्राक्ष को धारण करता है, वह साक्षात् शिव है ।।79।।

हे वरानने ! जो साधक केवल (मात्र) रुद्राक्ष को भी धारण करता है, उसे कोई पाप स्पर्श नहीं कर सकता है । जैसे- अन्धकार सूर्य को स्पर्श नहीं कर सकता है ।।80।।

रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रेऽनन्त-फलप्रदः ।
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्षं एकोऽपि वरवर्णिनि ।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात् त्रिपुण्ड्र-रहितं यथा ॥81॥
रुद्राक्षं मस्तके बध्वा शिर-स्नानं करोति यः ।
गङ्गास्नान-फलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥82॥
रुद्राक्षं पूजयेत् यस्तु विना तोयाभिषेचनैः ।
यत् फलं शिव-पूजायां तदेवाप्नोति निश्चितम् ॥83॥
एकवक्त्रैः पञ्चवक्त्रैस्त्रयोदश-मुखैस्तथा ।
चतुर्दश-मुखैर्जप्त्वा सर्वसिद्धः प्रजायते ॥84॥
किं बहुक्त्या वरारोहे कृत्वा गतिकमद्भुतम् ।
रुद्राक्षं यत्नतो धृत्वा शिव एव स साधकः ॥85॥

रुद्राक्ष की माला में इष्टमन्त्र का जप करने पर अनन्त फलों की प्राप्ति होती है । हे वरवर्णिनि ! जिसके अङ्गों में एक भी रुद्राक्ष नहीं रहता, उसका जन्म ही निरर्थक है, जैसे कि त्रिपुण्ड्र को धारण न करने पर (जन्म निरर्थक हो जाता है) ।।81।।

मस्तक में रुद्राक्ष का बन्धन कर, जो व्यक्ति शिव-स्नान करता है, उसे गङ्गा स्नान के समान फल लाभ हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं हो सकता ।।82।।

जो व्यक्ति जल से अभिषेक के द्वारा रुद्राक्ष की पूजा करता है, उसे शिवपूजा का फल-लाभ होता है । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता है ।।83।।

एक मुख (रुद्राक्ष) के द्वारा, पञ्चमुख (रुद्राक्ष) के द्वारा, त्रयोदश मुख (रुद्राक्ष) के द्वारा अथवा चतुर्दश मुख (रुद्राक्ष) के द्वारा जप करने पर, सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है ।।84।।

(वस्तुतः रुद्राक्ष अनेक प्रकार का होता है – कोई रुद्राक्ष एक मुख वाला, कोई पाँच मुख वाला, कोई तेरह मुख वाला, कोई चौदह मुख वाला) ।

हे वरारोहे ! अधिक कथन की क्या आवश्यकता अर्थात् कोई आवश्यकता नहीं है । जो साधक रुद्राक्ष को धारण करता है, वह साक्षात् शिवस्वरूप बन जाता है ।।85।।

भस्मना तिलकं कृत्वा पश्चात् रुद्राक्ष-धारणम् ।
प्राणायां ततः कृत्वा संकल्प्योपास्य साधकः ॥86॥
मूलमन्त्र-सिद्धिकामः कुर्याच्च वर्ण-पूजनम् ।
षट्त्रिंशत्-वर्ण-मालार्चा विस्तारोन्नति-शालिनि ॥87॥
विलिप्य चन्दनं शुद्धं सर्ववर्णात्मके घटे ।
सर्वावयव-संयुक्तान् विलिख्य मातृकाक्षरान् ॥88॥
गुरुं संपूज्य विधिवत् घट-स्थापनमाचरेत् ।
पञ्चाशन्मातृका-वर्णान् पूजयेत् विभव-क्रमात् ॥89॥
पञ्चोपचारैः संपूज्य ध्यानं कृत्वा प्रसन्नधीः ।
शुक्ल-विद्युत्प्रतीकाशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।
कृष्णाम्बर परीधानां शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिनीम् ॥90॥
नानाभरण-भूषाढ्यां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलाम् ।
कटाक्ष-विशिखेद्दीप्त अञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ॥91॥

भस्म के तिलक को धारण करें । उसके बाद साधक प्राणायाम एवं सङ्कल्प करके, उपासना को आरम्भ करें ॥86॥

मूलमन्त्र में सिद्धिलाभ की कामना से वर्णमाला की पूजा करनी चाहिए । हे विस्तारोन्नतशालिनी षट्त्रिंशत् (36) वर्णमाला की पूजा करना विधेय है ॥87॥

सर्ववर्णात्मक घट में विशुद्ध चन्दन का लेपन कर, अवयवयुक्त मातृकाक्षर को लिखें ('घट' से तात्पर्य है – अपने पञ्चभूतात्मक शरीर । अतः सर्ववर्णात्मक इस पञ्चभूतात्मक शरीर पर मातृकाक्षर को लिखने का विधान दिया गया है – ऐसा समझना चहिए) ॥88॥

विधि के अनुसार गुरुपूजन कर घट-स्थापन करें । इसके अनन्तर अनुलोमक्रम से पञ्चाशत् (50) मातृकावर्णों की पूजा करें ॥89॥

प्रफुल्लितवदन से पञ्चोपचार के साथ पूजन-समापन कर (इस प्रकार) ध्यान करें – (जो) विद्युत-सदृश भास्वर प्रकाशयुक्ता, चपलनयना, द्विभुजा, कृष्णाम्बर-परिधान हैं एवं जिन्होंने शुभ्रवसन के द्वारा उत्तरीय की रचना की हैं ॥90॥

जो विविध आभरण-भूषणों के द्वारा शोभायमान हैं, जो सिन्दूर के तिलक के द्वारा उज्ज्वल हैं, जो (अपने) कटाक्ष-बाणें के द्वारा उद्दीप्ता हैं, जिनके लोचन अञ्जन के द्वारा चर्चित हैं – ॥91॥

मन्त्र-सिद्धि-प्रदां नित्यां ध्यायेत् सत्त्व-स्वरूपिणीम् ।
रक्त-विद्युत्प्रतीकाशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।।92।।
शुक्लाम्बर-परीधानां कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिनीम् ।
नानाभरण-भूषाढ्यां सिन्दूर तिलकोज्ज्वलाम् ।।93।।
कटाक्ष-विशिखोद्दीप्त-अञ्जनाञ्जित-लोचनाम् ।
मन्त्र-सिद्धि-प्रदां नित्यां ध्यायेत् रजः-स्वरूपिणीम् ।।94।।
भ्रमत्-भ्रमर-सङ्काशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।
रक्त-वस्त्र-परीधानां कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिनीम् ।।95।।
नानाभरण-भूषाढ्यां सिन्दूर-तिलकोज्ज्वलाम् ।
कटाक्ष-विशिखोद्दीप्त-द्रुम-लता-परिसेवताम् ।।96।।
मन्त्र-सिद्धि-प्रदां नित्यां ध्यायेत्तमः-स्वरूपिणीम् ।
ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा त्रिगुणां पूजयेत् क्रमात् ।।97।।

जो सतत् मन्त्रसिद्धिप्रदा हैं, सत्त्वस्वरूपिणी लोहितविद्युत् सदृश जिनकी प्रभा है,जो द्विभुजा एवं चपलनयना हैं – ।।92।।

जो शुक्लवस्त्र परिहिता हैं, जिन्होंने कृष्णवस्त्र के द्वारा (अपनी) उत्तरीय का निर्माण किया है, विविध आभरण एवं भूषणों के द्वारा जो शोभायमाना हैं, जो सिन्दूर के तिलक के द्वारा उज्ज्वला हैं ।।93।।

जो कटाक्ष वाणों के द्वारा उद्दीप्ता हैं, जिनके नयन अञ्जन के द्वारा चर्चित हैं, जो सतत् मन्त्रसिद्धिप्रदा हैं – एवं विध रजःस्वरूपिणी का ध्यान करें ।।94।।

भ्राम्यमान भ्रमरतुल्य जिनके वर्ण हैं, जो चपलनयना एवं द्विभुजा हैं, जो रक्तवस्त्र-परिहिता हैं एवं जिनके स्कन्ध पर कृष्णवसन से बनाया गया उत्तरीय शोभायमान हैं – ।।95।।

जो नानाप्रकार आभरण-भूषणों के द्वारा विराजमाना हैं, सिन्दूर के द्वारा रचित तिलक से उज्ज्वल हैं, जो कटाक्ष-विशिख के द्वारा उद्दीप्ता हैं, जो वृक्ष की शाखाओं एवं लताओं के द्वारा परिसेविता हैं – ।।96।।

जो मन्त्रसिद्धिप्रदायिनी हैं, जो तमस-स्वरूपिणी हैं – इस प्रकार से वर्णमाला का ध्यान कर (उन्हें) पाद्य-अर्घ्य प्रभृति प्रदान कर, यथाक्रम से सत्त्व, रजः एवं तमोगुण की पूजा करें ।।97।।

ॐ अङ्कार-रूपिण्यै नमः पाद्यैः प्रपूजयेत् ।
आदि-ध्यायेन सुभगे यजेत् सत्त्व-मयीं पराम् ॥98॥
ॐ कङ्कार-रूपिण्यै नमः पाद्यादिभिर्यजेत् ।
क्रमात् सप्तदशार्णं हि द्वितीयं ध्यानमाचरन् ॥99॥
ॐ दङ्कार-रूपिण्यै नमः पाद्यादिभिर्यजेत् ।
क्रमात् सप्तदर्शाणं हि तृतीयं ध्यानमाचरन् ॥100॥
एवं क्रमेण पञ्चाशत्-वर्णं हि परिपूजयेत् ।
इति ते कथितं भद्रे पञ्चाशद्वर्णपूजनम् ॥101॥
वर्णानां पूजनात् भद्रे देव-पूजा प्रजायते ।
अणिमाद्यष्ट-सिद्धीनां पूजा स्यात् वर्ण-पूजनात् ॥102॥
सप्त-कोटि-महाविद्या उपविद्या तथैव च ।
श्रीविष्णोः कोटि-मन्त्रश्च कोटि-मन्त्रः शिवस्य च ॥103॥
पूजनात् पूजितं सर्वं वर्णानां सिद्धि-दायकम् ।
प्रथमं प्रणवं दत्त्वा सहस्रं कुण्डली-मुखे ॥104॥

'ॐ अङ्काररूपिण्यै नमः' – इस मन्त्र का उच्चारण कर, पाद्य के द्वारा पूजा कर, हे सुभगे ! प्रथम-ध्यान के द्वारा सत्त्वमयी वर्णमाला का याग करें ॥98॥

'ॐ कङ्काररूपिण्यै नमः' – इस मन्त्र का उच्चारण कर, पाद्य प्रभृति के द्वारा पूजा कर, यथाक्रम से सप्तदश वर्णों का द्वितीय ध्यान करें ॥99॥

'ॐ दङ्काररूपिण्यै नमः' – इस मन्त्र का उच्चारण कर, पाद्य प्रभृति के द्वारा पूजा करने के बाद यथाक्रम से सप्तदर्श वर्णों का तृतीय ध्यान करें ॥100॥

इस क्रम से पञ्चाशत् (50) वर्णों का पूजन करें । हे भद्रे ! पञ्चाशत् वर्णों की पूजा-विधि मैंने आपको बताया ॥101॥

हे भद्रे ! वर्णमाला की पूजा करने पर, देवपूजा की जाती है । वर्णमाला की पूजा के द्वारा अणिमा, गरिमा, लघिमा प्रभृति अष्टसिद्धियों की भी पूजा की जाती है ॥102॥

सप्तकोटि महाविद्याएँ, उपविद्याएँ, श्रीविष्णु के कोटि मन्त्र एवं शिव के कोटि मन्त्र हैं ॥103॥

समस्त वर्णों की पूजा करने पर, पूर्वोक्त सिद्धिदायक मन्त्रों की पूजा भी हो जाती है । पहले कुण्डलिनी के मुख में एक सहस्र प्रणाम (ॐ) का उपहार दें ॥104॥

मूलविद्यां ततो भद्रे सहस्त्र-युगलं जपेत् ।
ततस्तु सुभगे मातर्जपेच्च दीपनी-पराम् ।।105।।
आदौ गायत्रीमुच्चार्य मूल-मन्त्रं ततः परम् ।
प्रणवञ्च ततो भीमे त्रयाणां सहयोगतः ।।106।।
सदैवेनां महेशानि दीपनीं परिकीर्त्तितम् ।
एतामपि सहस्त्रञ्च प्रजपेत् कुण्डली-मुखे ।।107।।
प्रणवादौ जपेद्विद्यां गायत्रीं दीपनीं पराम् ।
गायत्रीं शृणु वक्ष्यामि अँ डँ ञँ णँ नँ मँ मे प्रिये ।।108।।
षडक्षरमिदं मन्त्रं गायत्री समुद्गीरितम् ।
अस्याश्च फलमाप्नोति तदैव वर्णिनि ।।109।।
स्मरणं कुण्डलीमध्ये मनसी उन्मनी सह ।
सहस्त्रारे कर्णिकायां चन्द्रमण्डल-मध्यगाम् ।।110।।

इसके बाद दो सहस्त्र मूलमन्त्र का जप करें । हे सुभगे ! उसके बाद जो उत्कृष्ट दीपनी संज्ञक मन्त्र है, उसका जप करें । ('दीपनी' किसे कहते हैं, इसका कथन परवर्ती श्लोक में किया गया है ।) ।।105।।

पहले गायत्री का उच्चारण कर, मूलमन्त्र का उच्चारण करें । हे भीमे ! बाद में प्रणव मन्त्र का भी उच्चारण करें । गायत्री, मूलमन्त्र एवं प्रणव – इन तीनों का एकसाथ जप करें ।।106।।

हे महेशानि ! उक्त प्रकार से, गायत्री, मूलमन्त्र एवं प्रणव – इन तीनों का एक साथ मिलित-रूप में जप किये जाने को 'दीपनी' कहा जाता है । कुण्डली के मुख में एक सहस्त्र दीपनी का जप करें ।।107।।

प्रणव के आदि में, गायत्री के मन्त्र में दीपनी विद्या का जप करें । सम्प्रति 'गायत्री' किसे कहते हैं, उसे सुनें । हे प्रिये ! अं डं ञं णं नं मं – यह 'गायत्री मंत्र है ।।108।।

उक्त षडक्षर के मन्त्र को 'गायत्री' कहते हैं । हे वर्णिनि ! इस गायत्री के जप का फल तत्क्षण प्राप्त हो जाता है ।।109।।

कुण्डली के मध्य में उन्मनी के साथ स्मरण करें । सहस्त्रार में, कर्णिका के मध्य में जो चन्द्रमण्डल विराजित रहते हैं, उन चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थिता हैं –।।110।।

सर्व-संकल्प-रहिता कला सप्तदशी भवेत् ।
उन्मनी नाम तस्य हि भव-पाश-निकृन्तनी ॥111॥
उन्मन्या सहितो योगी न योगी उन्मनीं विना ।
बुद्धिमङ्कुश-संयुक्तामुन्मनीं कुसुमान्विताम् ॥112॥
उन्मनीञ्च मनोवर्णं स्मरणात् सिद्धि-दायिनीम् ।
स्मरेत् कुण्डली-योगादमृतं रक्त-रोचिषम् ॥113॥
उन्मनी-कुसुमं तत्तु ज्ञेयं परमदुर्लभम् ॥114॥
हंसं नित्यमनन्त-मध्यम-गुणं स्वाधारतो निर्गता ।
शक्तिः कुण्डलिनी समस्त-जननी हस्ते गृहीत्वा च तम् ।
वान्ती स्वाश्रममर्क-कोटि-रुचिरा नामामृतोल्लासिनी ।
देवीं तां गमनागमैः स्थिर-मतिर्ध्यायेत् जगन्मोहिनीम् ॥115॥
इति ते कथितं ध्यानं मृत्युञ्जयमनामयम् ॥116॥

जो समस्त प्रकार के संकल्पों से शून्य सप्तदशी कला हैं, उन्हें ही 'उन्मनी' कहा जाता है । यह 'उन्मनी' भव-बन्धन कर्तन-कारिणी हैं ॥111॥

जो 'उन्मनी' अवस्था में विराज करते हैं, वही 'योगी' हैं । जिन्हें 'उन्मनी' अवस्था प्राप्त नहीं हो पायी है, उन्हें 'योगी' नहीं कहा जा सकता है । पुष्पिता एवं अङ्कुशसंयुक्ता जो उन्मनी बुद्धि है,उसी में युक्त रहना चाहिए ।

सिद्धिदायिनी उन्मनी का एवं मन्त्रवर्णों का स्मरण कर लोहित-कान्ति अमृत का स्मरण, कुण्डलीयोग के द्वारा करें ॥113॥

वह उन्मनी पुष्प योगियों के लिए भी परम दुर्लभ है ॥114॥

सभी की जननी कुण्डलिनी शक्ति हैं, जो कोटिसूर्यों के समान दीप्तियुक्ता हैं, जो सर्वदा नामरूप अमृत का उल्लास करती हैं, जो स्वयं के ही आधार हैं अर्थात् जो मूलाधार से निर्गत होकर अनन्त मध्यमगुण हंस का वमन करती हैं । सुषुम्नामार्ग के द्वारा सर्वदा ही हं एवं सः – इन दो शब्दों का (आदान-प्रदान), श्वास-प्रश्वास के आदान-प्रदान पूर्वक करने से (उपर्युक्त दोनों शब्दों को) करती रहतीं हैं । यह हंस ही जीवात्मा है । जगत् को मोहनकारिणी इन कुण्डलिनी देवी का अहोरात्र ध्यान करें ॥115॥

इस प्रकार,आपको, नीरोग-कारी मृत्युञ्जय के ध्यान को, मैंने बताया है ॥116॥

विना मनोन्मनी-मन्त्रं विना ध्यानं जपं वृथा ।
ततः संकल्प्य ध्यात्वैव मूलमन्त्रस्य सिद्धये ॥117॥
गायत्रीमयुतं जप्त्वा तद्दर्धं प्रणवं जपेत् ।
दीपनं प्रणवस्यार्द्धं जपेत् पञ्च-दिनावधि ॥118॥
शूद्राणां प्रणवं देवि चतुर्दश-स्वरं प्रिये ।
नाद-बिन्दु-समायुक्तं स्त्रीणाञ्चैव वरानने ॥119॥
मनौ स्वाहा च या देवी शूद्रोच्चार्या न संशयः ।
होमकार्ये महेशानि शूद्रः स्वाहां न चोच्चरेत् ॥120॥
मन्त्रेष्वूहो नास्ति शूद्रे विषबीजं विना प्रिये ।
गणपत्यादौ यत् दत्तं बलिदानं दिने-दिने ॥121॥
तेनैव बलिना भद्रे हविष्यं सम्मतं सदा ।
शेष इष्टं प्रपूज्याथ हविष्याशी स्त्रिया सह ॥122॥

उन्मनीमन्त्र के बिना एवं ध्यान के बिना जप करने पर वह जप निष्फल हो जाता है । अतः मूलमन्त्र की सिद्धि के उद्देश्य से संकल्प कर अयुत संख्यक गायत्री मन्त्र का जप कर, उसके अर्द्ध-संख्यक (=आधी संख्या में) प्रणव का जप करें । फिर, पाँच दिन-तक प्रणव के अर्द्ध-संख्यक (=आधी संख्या में) दीपन का जप करें ।।117-118।।

हे देवि ! शूद्र एवं स्त्रियों के लिए नाद-बिन्दु-संयुक्त चतुर्दश स्वर ही प्रणव के बदले में, उच्चरित होते हैं । हे वरानने ! प्रणव के बदले में, नाद-बिन्दु का योग कर, चतुर्दश स्वरों का इस प्रकार जप करना चाहिए – अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ ।।119।।

मन्त्र में 'स्वाहा' का उच्चारण शूद्र भी कर सकता है, इसमें कोई संशय नहीं है । किन्तु हे महेशानि ! होम के अनुष्ठानकाल में शूद्रों को 'स्वाहा' का उच्चारण नहीं करना चाहिए ।।120।।

विष बीज अर्थात् प्रणव को छोड़कर शूद्र के लिए कोई मन्त्र भी नहीं है । प्रतिदिन गणेश के उद्देश्य से जो बलिदान दिया जाता है –।।121।।

सर्वदा उस बलिदान में प्रदत्त अन्न के द्वारा ही हविष्य करना तान्त्रिकों का सम्मत है । इसके अनन्तर इष्ट-पूजा करके पत्नी के साथ हविष्याशी बनकर रहें ।।122।।

जापकस्य च यन्मन्त्रमेकवर्णं ततः प्रिये ।
तस्य पत्नी शक्तिरूपा प्रत्यहं प्रजपेत् यदि ॥123॥
तदा फलमवाप्नोति साधकः शक्ति-सङ्गतः ।
शक्तिहीने भेद्दुःखं कोटि-पुरश्चरणेन किम् ॥124॥
साधकश्च हविष्याशी साधिका तद्विवर्जिता ।
यथेच्छाभोजनं तस्यास्ताम्बूल पूरिताननाः ॥125॥
नानाभरण-वेशाढ्या धूपामोदन-मोदिता ।
शिव-हीना तु या नारी दूरे तां परिवर्जयेत् ॥126॥

श्रीदेव्युवाच —

गायत्री-जपकाले तु साधिका किं जपेत् प्रभो ॥127॥

श्रीशिव उवाच —

गायत्रीमजपा-विद्यां प्रजपेत् यदि साधिका ।
पूर्वोक्तेन विधानेन ध्यात्वा कृत्वा च पूजनम् ॥128॥

हे प्रिये ! जप-कर्ता का जो एक वर्ण का मन्त्र है, उनकी शक्तिरूपिणी पत्नी भी प्रतिदिन उस मन्त्र का जप करें ॥123॥

यदि साधक की शक्तिरूपा पत्नी उस एक वर्ण के मन्त्र का जप करतीं हैं, तो साधक भी शक्ति-संगति के कारण उसके फल को प्राप्त करते हैं । शक्ति न रहने पर दुःख प्राप्त होता है, जो (दुःख) कोटि पुरश्चरणों के द्वारा भी खण्डित नहीं हो सकता है ॥124॥

साधक भी हविष्याशी बनें । साधिका उसका वर्जन करें अर्थात् हविष्याशी न बनें । वह यथेच्छ भोजन कर मुख को ताम्बूलपूर्ण बनाकर रखें ॥125॥

नाना आभरणों एवं वेशभूषाओं के द्वारा सज्जित होकर, धूप प्रभृति सुगन्धित द्रव्यों के द्वारा सर्वदा आमोदिता बनें, शिवहीन नारी के सान्निध्य का वर्जन करें ॥126॥

श्रीदेवी ने कहा — हे प्रभो ! गायत्री का जप करते समय साधिका किस मन्त्र का जप करें ? ॥127॥

श्रीशिव ने कहा — साधिका यदि अजपा गायत्री का जप करती है ('हंसः' मन्त्र को 'अजपा' कहा जाता है), पूर्वोक्त विधि के अनुसार ध्यान एवं पूजा करने के उपरान्त — ॥128॥

मानसं परमेशानि जपेत्तद्गतमानसा ।
ततः षष्ठदिनं प्राप्य प्रातःस्नानं समाचरेत् ।।129।।
कुङ्कुमागुरु-पङ्केन कस्तूरी-चन्दनेन च ।
कूर्मबीजं लिखेत् भद्रे अथवा श्वेतचन्दनैः ।।130।।
तत्रासनं समास्थाय विशेत् साधकसन्निधौ ।
एवं विधाय सा साध्वी साधकोऽपि प्रसन्नधीः ।।131।।
संकल्प्य विधिना भक्त्या मूलमन्त्रस्य सिद्धये ।
लक्षं जपेत् पुरश्चर्या-विधौ विधि-विधानतः ।।132।।
तद्विधानं वदामीशे श्रुत्वा त्वमवधारय ।।133।।
ॐ ॐ कँ हुँ भँ सँ देवि प्रातःस्नानोत्तरं परम् ।
दशधा प्रजपेन्मन्त्रं जिह्वा-शोधन-कारकम् ।।134।।
ततश्च प्रजपेन्मत्रं मौनी मध्यन्दिनावधि ।
तस्य वामे तस्य पत्नी तस्य एकाक्षरं जपेत् ।।135।।
साधकः शिव-रूपश्च साधिका शिव-रूपिणी ।
अन्योन्य-चिन्तनाच्चैव देवत्वं जायते ध्रुवम् ।।136।।

हे परमेशानि ! (तो साधक) इष्टदेवता के प्रति तद्गतचित्त होकर, मानस जप करें एवं उसके बाद षष्ठ दिन में प्रातःस्नान करें ।।129।।

हे भद्रे ! कुङ्कुम एवं अगुरु, कस्तूरी एवं चन्दन के द्वारा अथवा केवल श्वेतचन्दन के द्वारा पहले कूर्म-बीज को लिखें ।।130।।

वह साध्वी साधिका उस स्थल पर आसन को स्थापित कर साधक के सान्निध्य में उपवेशन करें एवं साधक भी प्रसन्न वदन होकर (इसको) अङ्गीकार करें ।।131।।

मूलमन्त्र की सिद्धि के उद्देश्य से संकल्प कर, विधिपूर्वक पुरश्चरण-विधि के अनुसार एकलक्ष जप करें । हे ईशे ! उसका विधान मैं बता रहा हूँ, आप उस (विधान) का श्रवण कर, (उसका) अवधारण करें ।।132-133।।

हे देवि ! पहले प्रातःस्नान करें । उसके बाद जिह्वाशोधनकारी ॐ ॐ कं हुं भं सं – इस मन्त्र का जप दस बार करें ।।134।।

उसके बाद मध्य दिवस पर्यन्त मौन रहकर मन्त्र-जप करें । साधक के वाम भाग में स्थिता पत्नी भी एकाक्षर मन्त्र का जप करें ।।135।।

साधक शिवस्वरूप है एवं साधिका शक्तिस्वरूपिणी हैं । परस्पर का चिन्तन करने पर अवश्य ही देवत्वलाभ हो जाता है ।।136।।

आदावन्ते च प्रणवं दत्त्वा मन्त्रं जपेत् सुधीः ।
दशधा वा सप्तदशं जप्त्वा मन्त्रं जपेत्तु सः ॥137॥
प्रतःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि ।
एवं हि प्रत्यहं कुर्यात् यावल्लक्षं समाप्यते ॥138॥
द्वितीय-प्रहरादूर्ध्वं नित्य-पूजादिकं चरेत् ।
स्नानं कृत्वा ततो धीमान् हविष्यं बुभुक्ते ततः ।
तत्पत्नी शक्तिरूपा च पतिव्रत्य-परायणा ।
तस्या चेच्छा भवेत् येषु बुभुजे पानभूषिता ॥139॥
दशदण्ड गते रात्रौ शय्यायां प्रजपेन्मनुम् ।
ताम्बूल-पूरित-मुखो धूपामोदेन मोदितः ॥140॥
वामे श्रीशक्ति-रूपा च जपेच्च साधकाक्षरम् ।
दक्षिणे साधकः सिद्धो दिवा-माने जपेन्मनुम् ॥141॥
आद्यन्त-गोपनं कृत्वा प्रत्यहं प्रजपेत् यदि ।
ततः सिद्धिमवाप्नोति प्रकाशाद्धानिरेव च ॥142॥

साधक मूलमन्त्र के आदि में एवं अन्त में प्रणव को युक्त कर जप करें । साधक पहले दस वार या सात वार जप करके प्रधान जप को प्रारम्भ करें ॥137॥

प्रातःकाल से प्रारम्भ कर मध्याह्नकाल पर्यन्त जप करना चाहिए । इस प्रकार प्रतिदिन जव तक लक्ष-संख्यक जप की पूर्ति नहीं होती है, तव तक जप करना चाहिए ॥138॥

द्वितीय प्रहर के ऊर्ध्व में (=आगे) नित्यपूजा प्रभृति का अनुष्ठान करें । बुद्धिमान साधक स्नान करके हविष्य का भोजन करें । शक्तिस्वरूपा, पातिव्रत्य-परायण साधक-पत्नी भी कारण का पान करने के उपरान्त, जिस प्रकार के भोजन में उसकी स्पृहा होती है, उसी प्रकार का भोजन करें ॥139॥

रात्रि में दस दण्ड व्यतीत हो जाने पर, ताम्बूलपूर्ण मुखवाले बनकर एवं धूप के सुगन्ध के द्वारा आमोदित होकर, शय्या पर बैठकर मन्त्र-जप करें ॥140॥

साधक के वामभाग में शक्तिरूपिणी पत्नी निविष्ट-चित्त से मन्त्र जप करें और दक्षिणभाग में साधक स्वयं ही मन्त्रजप करें ॥141॥

आदि से अन्त पर्यन्त गोपन रखकर, यदि साधक प्रतिदिन मन्त्र-जप में रत रहते हैं, तो उनकी सिद्धि अनिवार्य है और (मन्त्र-जप का) प्रकाश हो जाने पर, हानि ही होगी ॥142॥

मातृका-पुटितं कृत्वा चन्द्रबिन्दु-समन्वितम् ।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रमनुलोम-विलोमतः ॥143॥

जपादौ सुभगे प्रौढ़े प्रत्यहं प्रजपेन्मनुम् ।
तेन हे सुभगे मातः पुरश्चरण मीरितम् ॥144॥

समाप्ते पुरश्चरणे गुरुदेवं प्रपूजयेत् ।
तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रो गुरुदेवस्य पूजनात् ॥145॥

जम्बुद्वीपस्य वर्षे च कलिकाले च भारते ।
दशांशं वर्जयेत् भद्रे नास्ति होमः कदाचन ॥146॥

दशांशं क्रमतो देवि पञ्चाङ्गं विधिना कलौ ।
नाचरेत् कुत्रचिन्मन्त्री पुरश्चर्याविधिं शुभे ॥147॥

भ्रमात् यदि महेशानि कारयेत् साधकोत्तमः ।
सिद्धिहानिर्महानिष्टं जायते भारतेऽनघे ॥148॥

चन्द्रबिन्दु-संयुक्त मातृका को संपुटित कर, प्रतिदिन अनुलोम-विलोम-क्रम से मन्त्र-जप करें ॥143॥

हे सुभगे ! प्रतिदिन इस प्रकार मन्त्रजप करने को 'पुरश्चरण' कहते हैं । पुरश्चरण समाप्त हो जाने पर, विधिपूर्वक गुरुपूजा करें । उपरिउक्त विधि के अनुसार पुरश्चरण करके, उसके बाद यदि गुरुदेव का पूजन किया जाय, तो जम्बूद्वीप के अन्तर्गत इस भारतवर्ष में कलिकाल में भी मन्त्र सिद्धि हो जाता है ॥144-145॥

कलिकाल में दशांश को छोड़ दें । दशांशक्रम में कदापि होम का अनुष्ठान न करें । विधिपूर्वक पञ्चाङ्ग-युक्त पुरश्चरण का अनुष्ठान करें । जप-संख्या के दशांश-संख्यक मन्त्रों के द्वारा होम, होम के दशंश-संख्यक तर्पण, तर्पण के दशांश-संख्यक अभिषेक एवं अभिषेक के दशांश-संख्यक ब्राह्मण भोजन – यही है पञ्चाङ्ग । हे महेशानि ! कोई साधक यदि भ्रान्ति के कारण, इस भारतवर्ष में उपरियुक्त दशाङ्ग-युक्त पुरश्चरण के लिए किसी व्यक्ति को प्रेरित करते हैं तो उनकी सिद्धि हानि होती है एवं महा-अनिष्ट होने की भी सम्भावना रहती है ॥146-148॥

दशांशं जायते पूर्णं गुरुदेवस्य पूजनात् ।
अतएव महेशानि भक्त्या गुरुपदं यजेत् ॥149॥
दक्षिणां गुरवे दद्यात् सुवर्णं वाससान्वितम् ।
धानं तिलं तथा दद्यात् धेनुं वापि पयस्विनीम् ॥150॥
अन्यथा विफलं सर्वं कोटि पुरश्चरणेन किम् ।
कुमारीभोजनं सान्तं सर्वसिद्धि प्रदायकम् ॥151॥
कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ।
पूजनात् दर्शनात् तस्या रमणात् स्पर्शनात् प्रिये ।
सर्वं सम्पूर्णमाप्नोति साधको भक्तिमानसः ॥152॥
पुरश्चरण-सम्पन्नो वीर-साधनमाचरेत् ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण मन्दभाग्योऽपि सिद्ध्यति ॥153॥
पुत्रदरधनस्नेह-लोभमोह विवर्जितः ।
मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम् ॥154॥
एवं प्रतिज्ञामासाद्य गुरुमाराध्य यत्नतः ।
बलिदानादिना सर्वं मानसैः परिपूज्य च ॥155॥

गुरुदेव की पूजा करने पर ही दशांश पूर्ण हो जाता है । इसलिए हे महेशानि ! भक्ति के साथ गुरुपूजन अवश्य ही करना चाहिए ।।149।।

गुरुदेव को वस्त्र के साथ सुवर्ण को दक्षिणा में देना चाहिए एवं धान, तिल अथवा दुग्धवती गाभी का दान करना चाहिए ।।150।।

अन्यथा समस्त कर्म ही विफल हो जाता है । कोटि पुरश्चरण करने पर भी कोई फल नहीं होता है । पहले कुमारी-भोजन कराने पर समस्त प्रकार की सिद्धियों का लाभ होता है । जो साधक कुमारी-भोजन कराता है, वह त्रैलोक्य को भोजन कराने का फल प्राप्त करता है । हे प्रिये ! कुमारी का दर्शन, स्पर्शन एवं रमण यदि भक्तिपूर्वक किया जाता है तो साधक को सर्वप्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है ।।151-152।।

पुरश्चरण-सम्पन्न साधक वीराचार के अनुसार साधना में रत रहें, जिस साधना के द्वारा मन्द-भाग्य (साधक) भी सिद्धि-लाभ करने में सक्षम होता है ।।153।।

स्त्री, पुत्र, धन, स्नेह, लोभ एवं मोह से विवर्जित साधक प्रतिज्ञा करें कि मैं मन्त्र को सिद्ध करूँगा अथवा देह-पात करूँगा । इस प्रकार प्रतिज्ञा करके, यत्नपूर्वक गुरुदेव की आराधना करके, बलिदान प्रभृति के द्वारा सर्वतोभाव से मानसपूजा करें ।।154-155।।

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।
तस्मिन् पक्षे विशेषेण पुरश्चरण माचरेत् ।।156।।
देव्या बोधं समारभ्य यावत् स्यात् नवमी तिथिः ।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं भक्ति-भावतः ।।157।।
होम-पूजादिकं चैव यथाशक्त्या विधिं चरेत् ।।158।।
सप्तम्यादौ विशेषेण पूजयेदिष्टदेवताम् ।
अष्टम्यादि नवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ।।159।।
अष्टमी-नवमी-रात्रौ पूजां कुर्यात् महोत्सवैः ।
इत्थं जपादिकं कुर्यात् साधकः स्थिरमानसः ।।160।।
शक्त्या सह वरारोहे कुमारी-पूजनं चरेत् ।
दशम्यां पराणं कुर्यान्मत्स्य-मांसादिभिः प्रिये ।।161।।
एवं पुरष्क्रियां कृत्वा साधकः शिवतां व्रजेत् ।
अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।।162।।
शरत्काले महादेव्या बोधने च महोत्सवे ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य नवम्यन्तं मम प्रिये ।
पूर्वोक्त-विधिना मन्त्री कुर्यात् पुरष्क्रियां धिया ।।163।।

उक्त प्रकार से मानस-पूजा कर, साधक यदि वर्ष में एकबार शरत्कालीन पूजा करता है, तो उस पक्ष में एकबार विशेष-रूप से पुरश्चरण का अनुष्ठान करें ।।156।।

देवी के बोधन से आरम्भ कर नवमी तिथि पर्यन्त, भक्ति-भाव से प्रतिदिन सहस्र-संख्यक इष्टमन्त्र का जप करें । यथाशक्ति होम, पूजा प्रभृति को करके सप्तमी आदि तिथियों में विशेष रूप से इष्टदेवता की पूजा करें । अष्टमी से नवमी तिथि पर्यन्त उपवास करके, अष्टमी एवं नवमी की रात्रि में महोत्सव के साथ पूजा करें । साधक स्थिरचित्त होकर उक्त प्रकार से जप प्रभृति का अनुष्ठान सम्पन्न करें ।।157-160।।

हे वरारोहे ! शक्ति के अनुसार कुमारी-पूजन करें । हे प्रिये ! दशमी तिथि में मत्स्य-मांस प्रभृति के द्वारा पारण करें ।।161।।

साधक इस प्रकार पुरश्चरण के अनुष्ठान का समापन कर लेने पर, उसे शिवत्व का लाभ होता है अथवा अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण का अनुष्ठान कहा गया है – शरत्काल में शारदीया पूजा के महोत्सव के समय, हे प्रिये ! महादेवी के बोधन में प्रतिपद तिथि से आरम्भ कर नवमी पर्यन्त साधक पूर्वोक्त विधि के अनुसार पुरश्चरण करें ।।162-163।।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ॥164॥
शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यन्तं सहस्रकम् ।
जपित्वा प्रत्यहं भद्रे सप्तम्यादौ प्रपूजयेत् ॥165॥
तथा सर्वोपचारैस्तु वस्त्रालङ्कार-भूषणैः ।
महिषैश्छागलैर्मेषैश्चतुर्वर्गं लभेन्नरः ॥166॥
अष्टमी-सन्धि-वेलायां तेनैव विधिना पशुम् ।
छित्वा तस्योपरि स्थित्वा मध्य-नक्तं जपेत् सुधीः ॥167॥
विभिर्ध्यानपरो भूत्वा वाञ्छितां सिद्धिमाप्नुयात् ।
नवम्यां नियतं जप्त्वा पूजयित्वा यथाविधि ॥168॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात् दशम्यां पारयेत्ततः ।
एवं कृत्वा पुरश्चर्यां किं न साधयति साधकः ॥169॥
अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
अष्टमीसन्धि-वेलायामष्टोत्तर-लता-गृहे ॥170॥

एक प्रकार का और पुरश्चरण कहा जा रहा है – शरत्काल में चतुर्थी से आरम्भ कर, नवमी तिथि पर्यन्त प्रतिदिन सहस्रसंख्यक जप करके, हे भद्रे ! सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी में देवीपूजा करें ।।164-165।।

और वस्त्र, अलङ्कार, भूषण एवं महिष, छाग, मेष, प्रभृत्ति समस्त प्रकार उपचारों के द्वारा पूजा करने पर, साधक चतुर्वर्ग धर्म – अर्थ, काम एवं मोक्ष – का लाभ कर सकता है ।।166।।

अष्टमी की सन्धिवेला में पूर्वोक्त के अनुसार पशु का छेदन कर, साधक उसके ऊपर स्थित होकर मध्यरात्रि में जप करता रहे ।।167।।

नवमी में विधिपूर्वक पूजा कर, निरन्तर जप-ध्यान करने पर, निर्भीक (=निडर) साधक अभीष्ट सिद्धि का लाभ करने में सक्षम हो सकता है ।।168।।

गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान कर, दशमी तिथि में पारण करें । इस प्रकार पुरश्चरण करने पर साधक को कौन-सी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती ? अर्थात् जो कुछ साधक का वाञ्छित है, उसका लाभ कर सकता है ।।169।।

अन्य प्रकार का पुरश्चरण इस प्रकार है – अष्टमी तिथि की सन्धि बेला में, साधक अष्टोत्तर लताओं के गृह में प्रवेश कर, यत्नपूर्वक लताओं के पूजन समापन करें ।।170।।

प्रविश्य मन्त्री विधिवत्तासामभ्यर्च्य यत्नतः ।
पूर्वोक्त कल्पमासाद्य पूजादिकमथाचरन् ॥171॥
केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
महासिद्धो भवेत् सद्यो लता-दर्शन-पूजनात् ॥172॥
लता-गृहं शृणु प्रौढ़े काम-कौतुक-लालसे ।
अष्टौ संख्या अतिक्रम्य नव-संख्यादि-सांखिका ॥173॥
यौवनादि-गुणैर्युक्ताः साधिकाः काम-गर्विताः ।
स्त्रियो यत्र गृहे सन्ति तद्गृहं हि लता-गृहम् ॥174॥
अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
पूर्वोक्तानि महेशानि हेमन्तादि-गतौ चरेत् ।
साधकः पूर्णतां प्राप्य सर्व-भोगेश्वरो भवेत् ॥175॥
अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ॥176॥
चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी ।
तावज्जप्ते महेशानि मन्त्री वाञ्छितमाप्नुयात् ॥177॥

पूर्वोक्त कल्प के अनुसार, लतागृह में गमनपूर्वक लताओं की पूजा करें, केवल अष्टोत्तरशत इष्टमन्त्र का जप करने पर ही साधक कामदेवतुल्य बन जाता है । लताओं के दर्शन एवं पूजन के द्वारा साधक महासिद्ध बनने में सक्षम हो जाता है ।।171-172।।

सम्प्रति, हे प्रौढ़े ! काम-कौतुक-लालसा-सम्पन्ने ! लतागृह किसे कहते हैं, उसका श्रवण करें । आठ संख्या को अतिक्रम कर, नव प्रभृति संख्याओं से युक्ता, यौवन प्रभृति गुणों के द्वारा समन्विता, एवं कामगर्विता जो साधिका हैं, वे ही 'लता' हैं एवं एवंविध 'लता' जिस गृह में निवास करती हैं, उसे 'लतागृह' कहा जाता है ।।173-174।।

अथवा, अन्य प्रकार से पुरश्चरण का अनुष्ठान किया जा सकता है – हे महेशानि ! हेमन्त प्रभृति ऋतुओं के प्राप्त होने पर, पूर्वोक्त विधि के अनुसार, अनुष्ठान पूर्ण होने पर, साधक समस्त प्रकार के भोगों का प्रभु बन जाता है ।।175।।

अन्य प्रकार पुरश्चरण को बताया जा रहा है – चतुर्दशी से आरम्भ कर, जितने दिन पर्यन्त द्वितीय चतुर्दशी न आती हो, उतने दिन पर्यन्त निरन्तर जपकरने पर, साधक अभीष्ट फल का लाभ कर सकता है ।।176-177।।

अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
कृष्णाष्टम्यां समारभ्य यावत् कृष्णाष्टमी भवेत् ॥178॥
सहस्र-संख्या जप्ते तु पुरश्चरणमिष्यते ।
यत् कृत्वा परमेशानि सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः ॥179॥
अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे ॥180॥
अष्टमी-नवमी-रात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः ।
दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्य-मांसादिभिः प्रिये ।
षट् सहस्रं जपेन्नित्यं भक्ति-भाव-परायणः ॥181॥
अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां वीर-वन्दिते ॥182॥
सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योदयो भवेत् ।
तावज्जप्ते निरातङ्कः सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥183॥
अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ॥184॥

अन्य प्रकार का पुरश्चरण इस प्रकार है – कृष्णाष्टमी से आरम्भ कर द्वितीय कृष्णाष्टमी पर्यन्त यदि सहस्र-संख्यक करके जप किया जाता है, तो उसे भी 'पुरश्चरण' कहते हैं । हे महेशानि ! जिसका अनुष्ठान करने पर, अवश्य ही सिद्धि-लाभ होता है । इस विषय में कोई सन्देह नहीं है ।।178-179।।

पुरश्चरण का प्रकारान्तर इस प्रकार है – देवीपूजा प्रभृति महोत्सव में (= उस समय) कृष्णा चतुर्दशी प्राप्त होने पर, नवमी तिथि पर्यन्त इष्ट-पूजा करनी चाहिए; अष्टमी एवं नवमी की रात्रि में विशेषरूप से पूजा करें । दशमी तिथि में मत्स्य-मांस प्रभृति के द्वारा पारण करना चाहिए । पूर्वोक्त दिनों में प्रतिदिन भक्तिभाव से षट्सहस्र (=6000) संख्यक इष्टमन्त्र का जप करें ।।180-181।।

प्रकारान्तर से पुरश्चरण को बताया जा रहा है – हे वीर-वन्दिते ! देवि ! अष्टमी में, नवमी में एवं चतुर्दशी में, सूर्योदय से आरम्भ कर, पुनः सूर्योदय होने पर्यन्त निरातङ्क होकर जप करने पर, सर्वप्रकार की सिद्धियों का लाभ होता है ।।182-183।।

पुनः प्रकारान्तर से पुरश्चरण का कथन किया जा रहा है – शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष – दोनों ही पक्षों के अष्टमी एवं चतुर्दशी तिथियों में, सूर्यास्त से आरम्भ

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
अस्तमारभ्य सूर्यस्य यावत् सूर्यास्तमं भवेत् ।
तावज्जप्तो निरातङ्कः सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥185॥
अथवा निर्जनस्थस्य अस्थि-शय्यासनेन च ।
उदायास्तं दिवा जप्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥186॥
तेनासनेन वा देवी अस्तमारभ्य भास्वतः ।
जपित्वा चास्त-पर्यन्तं साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥187॥
जपान्ते पूजयित्वा च गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥188॥
अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
सूर्योदयं समारभ्य घटिका च दश-क्रमात् ॥189॥
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने-दिने ।
वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा च शरद्धेमन्त्र-शिशिराः ॥190॥
वसन्तश्चैव पूर्वाह्णे ग्रीष्मो मध्यन्दिनं तथा ।
अपराह्णे प्रावृषः स्युः प्रदोषे शरदः स्मृताः ।
अर्द्धरात्रौ तु हेमन्तः शेषे च शिशिरः स्मृतः ॥191॥

कर, पुनः सूर्यास्त होने पर्यन्त, निरातङ्क होकर निरन्तर जप करने पर सर्वसिद्धीश्वर बना जा सकता है ॥184-185॥

अथवा निर्जन में रहकर अस्थि-शय्यारूप आसन पर (बैठकर) साधक दिन में सूर्योदय से आरम्भ कर सूर्यास्त पर्यन्त जप करने पर, समस्त प्रकार की सिद्धियों को लाभ करने में सक्षम बन जाता है ॥186॥

अथवा उस आसन पर ही पूर्वदिन के सूर्यास्त से आरम्भ कर परवर्ती दिन के सूर्यास्त पर्यन्त निरन्तर जप करने पर भी (वह) साधक सिद्धि-लाभ करने में सक्षम बन जाता है । जप के अन्त में, पूजा समापन कर गुरु को दक्षिणा प्रदान करें ॥187-188॥

अन्य प्रकार के पुरश्चरण को बताया जा रहा है – प्रतिदिन सूर्योदय से दश घटिका के क्रम से वसन्त प्रभृत्ति छः ऋतुएँ आती व जाती हैं । ये हैं – वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त एवं शिशिर ॥189-190॥

पूर्वाह्न में वसन्त, मध्याह्न में ग्रीष्म, अपराह्न में वर्षा, प्रदोष में शरत्, अर्द्धरात्रि में हेमन्त एवं अन्तिम रात्रि में शिशिर आती हैं ॥191॥

सूर्योदयं समारभ्य वसन्तान्तं समाहितः ।
तावज्जप्ते महेशानि पुरश्चर्या हि सिद्ध्यति ॥192॥

ततः पूजादिकं कृत्वा शक्ति-युक्तश्च साधकः ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥193॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
ग्रीष्मादिषु महेशानि पञ्चस्वर्तषु साधकः ।
पृथग् जप्त्वा वरारोहे पुरश्चर्या हि सिद्ध्यति ॥194॥

पूर्वोक्त-विधिना सर्वं कर्त्तव्यं वीर-वन्दिते ।
ऋतौ जप्त्वा समस्ते तु शक्तितः पूजयेत् पराम् ॥195॥

एवमाचार्य कृत्यं वै धनानामीश्वरो भवेत् ॥196॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
कुमारी-पूजनादेव पुरश्चर्या-विधिः स्मृतः ॥197॥

सूर्योदय से वसन्त के अन्त तक स्थिरचित्त से साधक यदि जप करता है तो भी, हे महेशानि ! पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है ।।192।।

उसके बाद साधक अपनी शक्ति के साथ युक्त होकर पूजा प्रभृत्ति को समापन कर, यदि (साधक) गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान करता है, तो भी सर्वसिद्धीश्वर बन सकते हैं ।।193।।

प्रकारान्तर से पुरश्चरण का कथन इस प्रकार किया जा रहा है। हे महेशानि ! हे वरारोहे ! साधक यदि ग्रीष्म प्रभृत्ति पाँचों ऋतुओं में ही पृथक्-पृथक् रूप से जप करते हैं, तो भी पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है ।।194।।

हे वीरवन्दिते ! पूर्वोक्त विधि के अनुसार समस्त कार्यों को करें। समस्त ऋतुओं में यथाशक्ति जप करके देवी का पूजन करें। इस प्रकार समस्त अनुष्ठान सम्पन्न करने पर 'पुरश्चरण विधि' (सम्पन्न) होती है एवं उसके द्वारा धनेश्वर बनने में सक्षम हो सकते हैं ।।195-196।।

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण किया जा सकता है – केवल कुमारी पूजा करने पर भी पुरश्चरण-जनित फल-लाभ हो सकता है ।।197।।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजयेद्विभुम् ।
वस्त्रालङ्कार-भूषाद्यैः स्वयं सन्तोषयेद् गुरुम् ॥198॥
तत्सुतं तत्सुतं वापि तत्पत्नीञ्च विशेषतः ।
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥199॥
गुरु-सन्तोष-मात्रेण दुष्ट-मन्त्रोऽपि सिद्ध्यति ।
मासि मासि च मन्त्रस्य संस्कारान् दशधा चरेत् ॥200॥
एवं क्रम-विधानेन कृत्वा नित्यं हि साधकः ।
षण्मासाभ्यन्तरे वापि एक-वर्षान्तरेऽपि वा ॥201॥

प्रकारान्तर से पुरश्चरण की विधि बतायी जा रही है – गुरुदेव को लाकर, उन्हें देवता के समान बैठाकर, विधिपूर्वक उनकी पूजा करें एवं वस्त्र, आभूषण एवं अलंकार प्रभृति के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करें ।।198।।

अथवा गुरुपुत्र को अथवा गुरुपुत्र के पुत्र को अर्थात् गुरु के पौत्र को अथवा विशेष रूप में गुरुपत्नी की यदि पूजा की जाती है एवं पूजा का समापन हो जाने के बाद मन्त्र-जप किया जाता है तो भी सर्वसिद्धिश्वर बनना सम्भव है ।।199।।

गुरुदेव की सन्तुष्टिमात्र से ही दुष्टमन्त्र की भी सिद्धि हो सकती है । प्रत्येक महीने में मन्त्र का दश-विध संस्कार किया जाना चाहिए । मन्त्र के दशविध संस्कार हैं – जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन एवं गुप्ति ।

(1) जनन – मात्रकयन्त्र से पर्यायक्रम से मन्त्र के उद्धार को 'जनन' कहते हैं ।

(2) जीवन – उद्धृत मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को प्रणव के द्वारा पुटित कर शत बार जप करने को 'जीवन' कहते हैं ।

(3) ताड़न – मन्त्र के प्रत्येक वर्ण का शतबार या दसवार जप करके, मन्त्रों को पृथक्-पृथक् लिखकर, प्रत्येक वर्ण को वायुबीज 'वं' मन्त्र के द्वारा युक्त कर, चन्दन के जल के द्वारा ताड़न करने को 'ताड़न' कहते हैं ।

(4) बोधन – मन्त्रों को लिखकर दस बार ताड़ना कर मन्त्रवर्णों की संख्या के अनुसार करबीर के पुष्प से 'रं' बीज का उच्चारण करते हुए 'हनन' करने को 'बोधन' कहते हैं ।

साधनैः सुभगे भद्रे यदि सिद्धिर्न जायते ।
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सत्यमेतन्मतं शृणु ॥202॥
ख्यातिर्बाहन-भूषादि-लाभः सुचिर-जीविता ।
नृपाणां तत्कुलानाञ्च वात्सल्यं लोक-वश्यता ॥203॥
महदैश्वर्यं नित्यञ्च पुत्र-पौत्रादि-सम्पदः ।
अधमा सिद्धयो भद्रे षण्मासाभ्यन्तरे यदि ॥204॥

---

(5) **अभिषेक** – मन्त्रों के वर्गों को लिखकर, जितने संख्यक वर्ग हैं, उतने संख्यक रक्त-करबीर के पुष्प से, प्रत्येक वर्ण को 'रं' बीज के द्वारा अभिमन्त्रित करना है एवं उसके बाद मन्त्र के वर्णों की संख्या के अनुसार, अश्वत्थ पल्लव के द्वारा सिञ्चन करने को 'अभिषेक' कहते हैं ।

(6) **विमलीकरण** – सुषुम्ना के मूल में एवं मध्य भाग में मन्त्र का चिन्तन करके, ज्योतिर्मन्त्र के द्वारा दग्ध करने को 'विमलीकरण' कहते हैं । (ज्योतिर्मन्त्र है – ॐ ह्रौं) ।

(7) **आप्यायन** – स्वर्ण, कुशोदक या पुष्पोदक के द्वारा ज्योतिर्मन्त्र से मन्त्र के वर्णों को आप्यायन करने को 'आप्यायन' कहते हैं ।

(8) **तर्पण** – ज्योतिर्मन्त्र से जल के द्वारा मन्त्र का तर्पण करना चाहिए ।

(9) **दीपन** – ॐ ह्रीं एवं श्रीं – इन बीजत्रय के योग में 'दीपन' करना कहा जाता है ।

(10) **गुप्ति** – इष्टमन्त्र को गोपन करना 'गुप्ति' कहा जाता है ।

उपरिउक्त क्रम के अनुसार, विधि के अनुसार, निरवच्छिन्न साधन के द्वारा साधक छः महीने के अन्दर अथवा एक वर्ष के अन्दर – हे सुभगे ! यदि सिद्धि प्राप्ति नहीं होती है, तो उस स्थल पर उपायान्तर का अवलम्बन करना चाहिए । सत्य, सत्य ही यह मेरा मत है, उस उपाय को श्रवण करें ॥200-202॥

ख्याति, वाहन एवं भूषणादि का लाभ, चिरञ्जीव बनना, नृप एवं नृपकुल के वात्सल्य का लाभ, समस्त लोक को वशीभूत करता है – ॥203॥

महत् ऐश्वर्य की प्राप्ति, नित्य पुत्र-पौत्रादि सम्पत्ति का लाभ – ये समस्त अधम सिद्धियाँ हैं । हे भद्रे ! छः महीने के अन्दर अथवा एक वर्ष के अन्दर इन सभी की प्राप्ति हो जाती है । हे शङ्करवन्दिते ! यदि ये वस्तुएँ उपरिउक्त समय के अन्दर

एक-वर्षान्तरे वापि सन्ति शङ्कर-वन्दिते ।
साधकाश्च तदा सिद्धा नात्र कार्या विचारणा ।।205।।
अत्रोपायान् प्रवक्ष्यामि यदि सिद्धि-विलम्बनम् ।
भ्रामणं बोधनं वश्यं पीड़नञ्च तथा प्रिये ।।206।।
पोषणं तोषणञ्चैव दहनञ्च ततः परम् ।
उपायाः सन्ति सप्तैते कृत्वा त्रेता-युगेषु च ।।207।।
द्वापरे च तथा भ्रदे उपायं सप्तमं स्मृतम् ।
न प्रशस्तं कलौ भ्रदे सप्त शङ्कर-भाषितम् ।।208।।
डाकिन्यादि युतं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनुम् ।।209।।
डाकिनी-पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते ।
राकिणी-पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनुम् ।।210।।
राकिणी-पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते ।
लाकिनी-पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनुम् ।।211।।
लाकिनी-पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते ।
काकिनी-पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनुम् ।।212।।

प्राप्त हो जाती है, तो भी साधक सिद्ध हो गया है – ऐसा समझना चाहिए । इसमें किसी प्रकार के विचार का कोई अवकाश नहीं है ।।204-205।।

यदि सिद्धि की प्राप्ति में विलम्ब होता है, तो उसके लिए भी उपाय बताऊँगा । हे प्रिये ! भ्रामण, बोधन, वश्य, पीड़न, पोषण, तोषण एवं दहन – ये सात उपाय त्रेता में प्रशस्त हैं एवं द्वापर में सप्तम (उपाय प्रशस्त है); किन्तु कलियुग में यह प्रशस्त नहीं है – ऐसी शिव की उक्ति है ।।206-208।।

डाकिनी प्रभृति को युक्त कर एक लाख मन्त्र जप करें, डाकिनी (बीज) से पुटित कर, जप करने पर यदि सिद्धि प्राप्ति नहीं होती है, तो राकिनी बीज से पुटित कर एक लाख जप करें ।।209-210।।

राकिणी-बीज से पुटित कर मन्त्र का जप करने पर भी यदि सिद्धि लाभ नहीं होता है, तो लाकिनी बीज से पुटित कर एक लाख जप करें ।।211।।

लाकिनी-बीज से संपुटित कर मन्त्र जप करने पर भी यदि सिद्धि-प्राप्ति नहीं होती है, तो काकिनी-बीज से सम्पुटित कर एक लाख मन्त्र का जप करें ।।212।।

काकिनी-पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते ।
शाकिनी-पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनुम् ॥213॥
हाकिनी-पुटितं कृत्वा जपेल्लक्षं समाहितः ॥214॥
तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रो नात्र कार्या विचारणा ।
हाकिनी-पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्न जायते ।
पुटितं सत्त्व-रूपिण्या लक्षञ्च प्रजपेन्मनुम् ॥215॥
पुटितं सत्त्व-रूपिण्या यदि सिद्धिर्न जायते ।
ककारादि-क्षकारान्ता मातृका वर्ण-रूपिणी ॥216॥
तया संपुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनुम् ।
छिन्न-विद्यादयो मन्त्रास्तन्त्रे तन्त्रे निरूपिताः ॥217॥
एते ते सिद्धिमायान्ति मातृका-वर्ण-भवतः ।
निश्चितं मन्त्र-सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥218॥

काकिनी (बीज) से पुटित मन्त्र का जप करने पर भी यदि सिद्धि प्राप्ति नहीं होती है तो शाकिनी बीज से सम्पुटित कर, एक लाख मन्त्र जप करें ।।213।।

शाकिनी (बीज) से पुटित मन्त्र का जप करने पर भी यदि सिद्धि-प्राप्ति नहीं होती है तो हाकिनी बीज से सम्पुटित कर, एक लाख मन्त्र-जप करें ।।214।।

इस प्रकार जप करने पर अवश्य ही सिद्धि लाभ होता है, इसमें किसी प्रकार का कोई अवकाश नहीं है । यदि कदाचित् हाकिनी (बीज) से सम्पुटित मन्त्र का जप करने पर भी सिद्धि-लाभ नहीं होता है तो सत्त्वरूपिणी का एक लाख मन्त्र जप करें ।।215।।

सत्त्व-रूपिणी बीज के द्वारा सम्पुटित मन्त्र के जप से भी यदि सिद्धि-प्राप्ति नहीं होती है, तो ककारादि से क्षकार पर्यन्त जो वर्णरूपिणी मातृका है, उसका शरण लेवें ।।216।।

अर्थात् उस वर्णरूपिणी मातृका के द्वारा सम्पुटित कर, एक लाख मन्त्र-जप करें । छिन्न-विद्या प्रभृति मन्त्रों का निरूपण समस्त तन्त्रों में ही किया गया है ।।217।।

मातृका-वर्ण से सम्पुटित इन मन्त्रों के जप के द्वारा विभिन्न प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है । निःसन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि – इसके द्वारा मन्त्र की सिद्धि होती है । इसमें किसी प्रकार के विचार का कोई अवकाश नहीं है ।।218।।

वर्णमयो पुटीकृत्य यदि सिद्धिर्न जायते ।।219।।
ततो गुरुं पुटीकृत्य लक्षञ्च संजपेन्मनुम् ।
गुरुदेव-प्रसादेन अतुलां सिद्धिमाप्नुयात् ।।220।।

श्रीपार्वत्युवाच –

आदिदेव महादेव आद्यन्त-गोपनं वद ।
यदि नो कथ्यते देव विमुञ्चामि तदा तनुम् ।।221।।

श्रीईश्वर उवाच –

आद्यन्त-गोपनं सूक्ष्मं कथं तत् कथयाम्यहम् ।
जम्बुद्वीपस्य वर्षेषु कलौ लोकाधमाः स्मृताः ।।222।।
गुरुभक्ति-विहीनाश्च भविष्यन्ति गृहे गृहे ।
दुष्क्रियायां रताः सर्वे परमज्ञान-वर्जिताः ।।223।।
लौकिकाचारिणः सर्वे भविष्यन्ति गृहे गृहे ।
विना शब्द-परिज्ञानं मन्त्र-दाता द्विजो भवेत् ।।224।।

वर्णरूपिणी मातृका से सम्पुटित मन्त्र के जप के द्वारा भी यदि कदाचित् सिद्धि-प्राप्ति नहीं होती है, तो अन्ततः गुरुबीज के द्वारा सम्पुटित मन्त्र का एक लाख जप करें। गुरुदेव की कृपा से अतुलनीय सिद्धि-प्राप्ति होती है ।।219-220।।

श्रीमती पार्वती ने कहा – हे आदिदेव महादेव ! आदि एवं अन्त के गोपन को मुझे बतावें । हे देव ! यदि वह मुझे आप नहीं बताते हैं, तो मैं शरीर का त्याग कर दुँगी ।।221।।

श्रीईश्वर ने कहा – आदि एवं अन्त का गोपन अति सूक्ष्म है, उसे मैं कैसे आपको बताऊँ । कलिकाल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत वर्षों में लोक अधम कहे गये हैं ।।222।।

प्रत्येक गृह में (लोग) गुरुभक्ति से विहीन होंगे एवं सभी लोग दुष्कर्म में रत रहेंगे और परम-ज्ञान वर्जित हो जायगा ।।223।।

प्रत्येक गृह में ही लोग लोकाचारी बन जावेंगे अर्थात् लोकाचार को ही वे लोग प्राधान्य देंगें और जिन्हें शब्द-परिज्ञान नहीं है, एवंविध द्विज ही मन्त्रदाता बनेंगे ।।224।।

मम सः श्रीमती-मन्त्रः संसारोद्भव-बन्धनात् ।
कथ्यते देव-देवेशि मन्त्रः सर्वत्र सिद्धिदः ॥225॥
जायते तेन मे शङ्का कथं मे प्राणवल्लभे ॥226॥

श्रीभैरव्युवाच –

भूतनाथ महाभाग हृदये मे कृपां कुरु ।
कथ्यतां कथ्यतां देव यतस्ते सेविका वयम् ॥227॥

श्रीईश्वर उवाच –

सुभगे शृणु मे मातः कृपया कथयामि ते ।
प्रथमे डाकिनी-बीजं युवती षोडशाक्षरम् ॥228॥
अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः ।
डाकिनी देव-देवस्य ईरितं बीजमुत्तमम् ॥229॥
आद्यन्त-पुटितं कृत्वा मन्त्रं लक्षं जपेद् यदि ।
तदा सिद्धो वरारोहे नान्यथा वचनं मम ॥230॥
अधुना संप्रवक्ष्यामि राकिणी-बीजमद्भुतम् ।
एकोच्चारण-मात्रेण सत्यस्त्रेता-युगे भवेत् ॥231॥

मेरा वह श्रीमती मन्त्र, जो संसार से उद्भव बन्धन से त्राण करके सर्वत्र ही सिद्धिप्रद बनता है । हे देवदेवेशि ! हे मेरी प्राणवल्लभे ! इस प्रकार सिद्धिप्रद मन्त्र को बताया जा रहा है, उससे मुझमें संशय उत्पन्न क्यों हो रहा है ? ॥225-226॥

श्रीभैरवी ने कहा – हे भूतनाथ ! हे महाभाग ! मेरे हृदय पर कृपा करें । हे देव ! कहें, आप मुझसे कहें, क्योंकि मैं आपकी सेविका हूँ ॥227॥

श्रीमहादेव ने कहा – हे सुभगे ! हे मेरी माता ! श्रवण करें । कृपावश मैं आपको पहले 'यौवन-सम्पन्ना षोडशाक्षरों का डाकिनी-बीज' बता रहा हूँ ॥228॥

अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः – यह षोडशाक्षरों का डाकिनी बीज है, जो देवादिदेव के भी अभीष्ट है ॥229॥

मन्त्र के आदि में एवं अन्त में सम्पुटित कर यदि एक लाख जप किया जाय, तो हे वरारोहे ! साधक अवश्य ही मन्त्र-सिद्धि बन जाता है । मेरे वचन की कदापि अन्यथा नहीं होती ॥230॥

सम्प्रति अद्भुत राकिणी-बीज को बताऊँगा, जिसका एकबार मात्र उच्चारण करने पर ही, त्रेतायुग होने पर भी (वह) सत्युग बन जाता है ॥231॥

कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ दश तथा महेश्वरि ।
इति ते कथितं भक्त्या राकिणी-बीजमद्भुतम् ।।232।।
टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ दशकं परमेश्वरि ।
इति ते कथितं भक्त्या लाकिनी-बीज-निर्णयम् ।
अधुना संप्रवक्ष्यामि काकिनीं सिद्धि-दायिनीम् ।।233।।
पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ अष्टार्णः वीर-वन्दिते ।
कथितं काकिनी-बीजं चतुर्वर्ग-फलप्रदम् ।।234।।
अधुना संप्रवक्ष्यामि सुभगे शृणु शाकिनीम् ।।235।।
वँ शँ षँ सँ चतुर्वर्णं वाञ्छितार्थ-प्रदं प्रिये ।
इदन्तु शाकिनी-बीजं चतुर्वर्ग-प्रदायकम् ।।236।।
अधुना संप्रवक्ष्यामि सुभगे शृणु हाकिनीम् ।
हँ लँ क्षँ हाकिनी-बीजं क्षिप्र-सिद्धि-प्रदायकम् ।।237।।

'कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ' – ये दस 'राकिणी-बीज' हैं। आपकी भक्ति को देखकर आपको इस अद्भुत राकिणी-बीज को बताया हूँ ।।232।।

'टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ' – हे परमेश्वरि ! ये दस लाकिनी-बीज हैं। आपकी भक्ति से मुग्ध होकर मैं आपको इस लाकिनी-बीज को बताया हूँ। सम्प्रति काकिनी-बीज को बताऊँगा, जो सिद्धिप्रद है ।।233।।

'पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ' – ये आठ काकिनी-बीज हैं। हे वीरवन्दिते ! धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष – इन चतुर्वर्ग को प्रदान करने वाली 'काकिनी-बीज' को बताया गया ।।234।।

हे सुभगे ! सम्प्रति शाकिनी-बीज को बताऊँगा, उसका श्रवण करें। हे प्रिये ! 'वँ शँ षँ सँ' – ये चार वर्ण वाञ्छितार्थ को प्रदान करता है। इसे ही 'शाकिनी बीज' कहते हैं; जो चतुर्वर्ग-रूप फल को प्रदान करता है ।।235-236।।

हे सुभगे ! अधुना हाकिनी-बीज को बताऊँगा, उसे श्रवण करें। 'हँ लँ क्षँ' – इन तीनों को 'हाकिनी-बीज' कहते हैं, जिसके द्वारा सम्पुटित कर मन्त्र-जप करने पर शीघ्र ही सिद्धि प्राप्ति होती है ।।237।।

सत्त्व-स्वरूपिणी बीजं शृणु सिद्धि-प्रदायकम् ।
अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः ।
षोडशार्णं महाबीजं सत्त्वमध्ये प्रकीर्त्तितम् ॥238॥

रजः-स्वरूपिणी बीजं शीघ्र-सिद्धि-प्रदायकम् ।
कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ ।
इदं सप्त-दशार्णं हि राजोमध्ये प्रकीर्तितम् ॥239॥

रम्यं तमोमयी-बीजमधुना ते वदाम्यहम् ।
दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ ।
इदं सप्त-दशार्णं हि तमो-मध्ये उदाहृतम् ॥240॥

अधुना संप्रवक्ष्यामि मातृका-बीजमद्भुतम् ॥241॥

अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः ।
कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ ।
तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ ।
इदं पञ्चाशदर्णं हि मातृकायाः प्रकीर्तितम् ॥242॥

अधुना सत्त्व-स्वरूपिणी बीज, जो सिद्धि-प्रदानकारी है, उसे बता रहा हूँ, श्रवण करें । 'अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः' – इस षोडशाक्षर महाबीज को 'सत्त्व-स्वरूपिणी बीज' कहते हैं ॥238॥

सम्प्रति शीघ्र सिद्धि-प्रदानकारी रजः-स्वरूपिणी बीज को बता रहा हूँ । कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ – इन सप्तदश वर्णों का मन्त्र रजोगुण के अन्तर्गत है – ऐसा स्वीकार किया गया है ॥239॥

अधुना रमणीय तमोमयी बीज को बता रहा हूँ – दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ – इन सप्तदश वर्णों के मन्त्र को तम के मध्य में स्थित-रूप में कहा गया है ॥240॥

सम्प्रति अद्भुत मातृकाबीज को बताऊँगा – अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः, कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ लँ क्षँ – इन पचास वर्णों को 'मातृका-बीज' कहा गया है ॥241-242॥

अनुलोमविलोमेन पुटीकृत्य जपं चरेत् ।
लक्षं यावन्महेशानि ततः सिद्धो न संशयः ॥243॥
गुरु-बीजं समुद्दिष्टं गुरुरित्यक्षर-द्वयम् ॥244॥
डाकिनी राकिणी देवि लाकिनी काकिनी ततः ।
शाकिनी हाकिनी संज्ञा सत्त्व-रूपा ततः प्रिये ।
रजोरूपा तमोरूपा मातृका-रूपिणी गुरुः ॥245॥
एतास्तु परमेशानि मूर्त्तिः पञ्चाशदक्षरम् ।
डाकिनी च महादेवि अणिमा-सिद्धि-दायिनी ॥246॥
राकिणी लघिमा-सिद्धि-दायिनी लाकिनी तथा ।
प्राप्ति-सिद्धि-दायिनी च काकिनी काम्य-दायिनी ॥247॥
शाकिनी महिमा-सिद्धि-दायिनी हाकिनी ततः ।
कामावशायिता-सिद्धिं जपादेव प्रयच्छति ॥248॥
सत्त्वरूपा तमोरूपा रजोरूपा तथैव च ।
एताश्चैव महादेवि चतुर्वर्गं ददन्ति हि ॥249॥

इष्ट मन्त्र के साथ उक्त मातृका-बीज को अनुलोम-विलोम के द्वारा सम्पुटित करके जप करें । हे महेशानि ! इस प्रकार एक लाख जप करने पर ही सिद्धि प्राप्त होती है – इसमें कोई संशय नहीं है ॥243॥

'गुरु' इन दो अक्षरों के मन्त्र को 'गुरुबीज' कहते हैं ॥244॥

हे देवि ! उसके बाद डाकिनी, राकिनी, लोकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी तथा सत्त्व-रूपिणी – हे प्रिये ! इन संज्ञाओं को किया गया है । उसके बाद, रजोरूपा, तमोरूपा, मातृकारूपिणी एवं गुरु (इन संज्ञाओं को भी किया गया है) ॥245॥

हे परमेशानि ! ये पञ्चाशत् अक्षरों की ही मूर्त्तियाँ हैं । हे महादेवि ! डाकिनी अणिमा-सिद्धि-प्रदान-कारिणी हैं ॥246॥

राकिणी एवं लाकिनी – लघिमा-रूप सिद्धि प्रदान करती हैं एवं काम्य-फल प्रदानकारिणी (भी) हैं । काकिनी प्राप्ति-रूप सिद्धि प्रदान करती हैं ॥247॥

शाकिनी महिमा-रूप सिद्धि प्रदान करती हैं एवं हाकिनी कामवशायिता-रूप सिद्धि को, जप सम्पूर्ण होते ही प्रदान करती हैं । (इसी प्रकार डाकिनी प्रभृति वर्ग देवतागण अष्ट सिद्धिओं को प्रदान करती हैं) ॥248॥

हे महादेवि ! सत्त्वरूपा, रजोरूपा, तमोरूपा देवीगण धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष – इस चतुर्वर्ग को प्रदान करती हैं ॥249॥

पञ्चाशद्वर्णरूपा या निर्वाणं सा ददाति हि।
गुरुर्ददाति सकलं ब्रह्माण्ड-ज्ञानमव्ययम् ॥250॥
इति ते कथितं भक्त्या डाकिन्यादि-विनिर्णयम् ॥251॥
डाकिनी राकिणी चैव लाकिनी काकिनी तथा।
शाकिनी काकिनी देवि वर्णानामत्र देवताः ॥252॥
गुणानां सिद्धि-वर्णनां षडेत अधिदेवताः।
डाकिन्यादेर्विना ज्ञानं वर्णे वर्णे पृथक् पृथक्।
अज्ञानात् प्रजपेन्मन्त्रं डाकिन्यादेश्च भक्षणम् ॥253॥
विना वर्ण-परिज्ञानम् कोटि-पुरश्चरणेन किम्।
तस्य सर्वं भवेद् दुःखमरण्ये रोदनं यथा ॥254॥
शृणु ध्यानं प्रवक्ष्यामि डाकिनीनां शुचिस्मिते ॥255॥

ध्यानानि यथा

शरच्चन्द्रप्रतीकाशां द्विभुजां लोललोचनाम्।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त-अञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ॥256॥

पञ्चाशत् (50) वर्णरूपा जो मातृका देवी हैं, वह निर्वाण प्रदान करती हैं एवं गुरु, समस्त प्रकार के अव्यय ब्रह्माण्ड-ज्ञान का दान करती हैं ॥250॥

आपकी भक्ति से मुग्ध होकर उक्त प्रकार से डाकिनी प्रभृति का विवरण दिया हूँ। डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी एवं हाकिनी – ये वर्णों के देवता हैं ॥251-252॥

सिद्धिप्रद वर्णों में, उपरिउक्त छः (वर्ण) 'अधिदेवता' हैं। प्रत्येक वर्ण में पृथक्-पृथक् रूप से डाकिनी प्रभृति के ज्ञान के बिना मन्त्र-जप करने पर (साधक को) डाकिनी प्रभृति का भक्षण बनना पड़ता है ॥253॥

डाकिनी प्रभृति का ज्ञान न रहने पर, कोटि पुरश्चरण करना भी व्यर्थ है। अतः अरण्य में रोदन करने के समान मन्त्र-जपकारी को केवल दुःखभोग ही करना पड़ता है ॥254॥

हे शुचिस्मिते ! डाकिनी प्रभृति के ध्यान को बता रहा हूँ, उसे श्रवण करें ॥255॥

ध्यान इस प्रकार है – शरत्कालीन चन्द्र के समान शुभ्रा, द्विभुजा, चञ्चल-लोचना, सिन्दूर-तिलक के द्वारा उद्दीप्ता एवं अञ्जनाञ्चित नयना – ॥256॥

कृष्णाम्बर-परीधानां नानालङ्कार-भूषिताम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यां डाकिनी-मन्त्रसिद्धये ॥257॥
अरुणादित्य-सङ्काशां द्विभुजां मृगलोचनाम् ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त-अञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ॥258॥
शुक्लाम्बर-परीधानां नानाभरण-भूषिताम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं राकिणीं-मन्त्रसिद्धये ॥259॥
सिन्दूरवर्ण-सङ्काशां द्विभुजां खञ्जनेक्षणाम् ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त-अञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ॥260॥
शुक्लाम्बर-परीधानां नानालङ्कार-भूषिताम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं लाकिनीं-मन्त्रसिद्धये ॥261॥
यवा-यावक-सङ्काशां द्विभुजां खञ्जनेक्षणाम् ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त अञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ॥262॥

जो कृष्ण-वसन परिधान की हुई हैं, जिनके अंग नाना प्रकार के अलंकारों के द्वारा भूषित हैं, एवं विध चन्द्रवदना का नित्य ध्यान डाकिनी-मन्त्र-सिद्धि के लिए करें ॥257॥

जिनकी दीप्ति अरुण आदित्य के समान है, जिनकी दो भुजाएँ हैं, मृगी के लोचन के समान जिनके लोचन हैं, जो सिन्दूर के द्वारा तिलक की रचना की हैं और इसी कारण उद्दीप्ता हैं, जिनके दोनों नयन अञ्जन के द्वारा शोभित हैं – ॥258॥

जो शुक्ल वस्त्र-परिहिता हैं, जिनका अंग विविध भूषणों के द्वारा भूषित है – एवं विध चन्द्रमुखी राकिणी देवी का सतत् ध्यान मन्त्र-सिद्धि के लिए करें ॥259॥

जो सिन्दूर के समान रक्तवर्णा हैं, जो दो बाहु-विशिष्टा हैं, जिनके चञ्चल लोचन खञ्जन-पक्षी के समान हैं, जो सिन्दूर-तिलक के द्वारा उद्दीप्ता हैं, जिनके नयन अञ्जन के द्वारा सुशोभित हैं – ॥260॥

जो श्वेतवस्त्र-परिहिता हैं, जिनका अङ्ग विविध भूषणों के द्वारा भूषित हैं – एवंविध चन्द्रमुखी लाकिनीदेवी का नित्य ध्यान मन्त्र-सिद्धि के लिए करें ॥261॥

अलक्त के समान जो रक्तवर्णा एवं द्विभुजा हैं, जिनके लोचन खञ्जन पक्षी के समान चपल हैं, सिन्दूर के द्वारा तिलक धारण करने के कारण जो उद्दीप्ता हैं, जिनके दोनों नयन अञ्जन के द्वारा शोभित हैं – ॥262॥

शुक्लाम्बर-परीधानां नानाभरण-भूषिताम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं काकिनीं-मन्त्रसिद्धये ।।263।।

शुक्लज्योतिः-प्रतीकाशां द्विभुजां मृगलोचनाम् ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त-अञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ।।264।।

कृष्णाम्बर-परीधानां नानालङ्कार-भूषिताम् ।
ध्यायेच्छशीमुखीं नित्यं शाकिनीं-मन्त्रसिद्धये ।।265।।

शुक्ल-कृष्णारूणाभासां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।
भ्रमद्भ्रमर-सङ्काशां कुटिलालक-कुन्तलाम् ।।266।।

सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त अञ्जनाञ्चित-लोचनाम् ।
रक्तवस्त्र-परीधानां शुक्ल-वस्त्रोत्तरीयिनीम् ।
ध्यायेच्छशीमुखीं नित्यं हाकिनी-मन्त्रसिद्धये ।।267।।

त्रिगुणायाश्च देवेशि ध्यानं पूर्व उदाहृतम् ।
अधुना संप्रवक्ष्यामि मातृका-ध्यानमुत्तमम् ।।268।।

जो श्वेतवसन परिधान की हुई हैं, जिनका अङ्ग नाना आभरणों के द्वारा अलङ्कृत है – एवंविध चन्द्रमुखी काकिनी देवी का ध्यान मन्त्रसिद्धि के उद्देश्य से सर्वदा करें ।।263।।

शुभ्रज्योतिःस्वरूपा, द्विभुजा, मृगलोचना, सिन्दूरतिलकोद्दीप्ता, अञ्जनाञ्चित नयना –।।264।।

कृष्णाम्बर-परिहिता, नानालङ्कार-भूषिता, चन्द्रमुखी शाकिनी देवी का ध्यान मन्त्रसिद्धि के लिए सर्वदा करें । जिनकी दीप्ति शुक्ल-कृष्ण एवं अरुण हैं, जिनकी दो भुजाएँ हैं, जिनके लोचन चपल हैं, भ्राम्यमाण भ्रमर के समान जिनकी कुटिल (= घुँघराले) केशराशि हैं –।।265-266।।

सिन्दूर के द्वारा रचित तिलक के द्वारा जो उद्दीप्ता हैं, जिनके लोचन के द्वारा शोभित हैं, जो रक्तवस्त्र परिहिता हैं, जिनका उत्तरीय शुक्लवस्त्र के द्वारा हैं – एवंविध चन्द्रमुखी हाकिनी देवी का निरन्तर ध्यान, मन्त्रसिद्धि के लिए करें ।।267।।

हे देवेशि ! त्रिगुणमयी देवी के ध्यान को पहले बता चुका हूँ, अधुना उत्कृष्ट मातृकाध्यान को बताऊँगा ।।268।।

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्त-मुखदोः, पन्मध्य-वक्षस्थलीम्-
भास्वन्मौलि-निबद्ध-चन्द्र-शकलामापीन-तुङ्ग-स्तनीम् ।
मुद्रामक्ष-गुणं सुधाढ्य-कलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्विभ्राणां विशद-प्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।269।।
गुरोरपि महेशानि पूर्वोक्त-ध्यानमाचरन् ।
पाद्यादिभि-र्वरारोहे संपूज्य प्रजपेन्मनुम् ।।270।।
पूर्वोक्तः यस्य यद्बीजं तन्मन्त्रं तस्य निर्णयम् ।
अं डाकिन्यै नमः स्वाहा कं काकिन्यै नमस्ततः ।।271।।
टं लाकिन्यै नमः स्वाहा पं काकिन्यै नमस्ततः ।
वं शाकिन्यै नमः स्वाहा हं हाकिन्यै नमस्ततः ।।272।।
तत्तत् ध्यानेन इत्युक्त्वा पूजयेदुपचारतः ।।273।।
उक्त बीजेन पुटितं कृत्वा मन्त्रं जपेत् यदि ।
तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रो शापादि-दोषदूषितः ।।274।।

पञ्चाशत् (50) लिपियों के मातृका-ध्यान के द्वारा मुख, हस्त, चरण, कटि एवं वक्षस्थल (रूप में) विभक्त किया गया है । जिनके देदीप्यमान मौलि में चन्द्रखण्ड निबद्ध है; जिनके स्तन पीनोन्नत हैं, करकमलों के द्वारा जो मुद्रा, अक्षमाला, अमृतकलश एवं पुस्तक को धारण की हुई हैं, जो विशद प्रभाओं से अन्विता हैं एवं जो लोचनत्रय युक्ता हैं, हम सभी एवंविध वाग्देवता के शरणापन्न होवें ।।269।।

हे महेशानि ! पूर्वोक्त विधि के अनुसार गुरुदेव का भी ध्यान करे, हे वरारोहे ! पाद्य-अर्घ्य प्रभृति के द्वारा पूजा समापन के पश्चात् मन्त्र का जप करें ।।270।।

(इससे) पूर्व जिनका जो बीज कहा गया है, वही (बीज) उनका मन्त्र है – ऐसा निर्णय किया गया है । जैसे- 'अं डाकिन्यै नमः स्वाहा', बाद में 'कं राकिन्यै (काकिन्यै) नमः स्वाहा' ।।271।।

'टं लाकिन्यै नमः स्वाहा', 'पं काकिन्यै नमः स्वाहा', उसके बाद 'वं शाकिन्यै नमः स्वाहा', बाद में 'हं हाकिन्यै नमः स्वाहा' ।।272।।

उन-उन देवी के पूर्वोक्त ध्यान (मन्त्र) के द्वारा ध्यान कर, उपरि उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए उपचार-पूर्वक पूजा करें । उसके बाद पूर्वोक्त बीज के द्वारा सम्पुटित मन्त्र का जप करना चाहिए । वैसा करने पर, शापादि दोषों के द्वारा दूषित मन्त्र भी सिद्ध हो जाता है ।।273-274।।

इति ते कथितं दिव्यं कलि-कालस्य सम्मतम् ।।275।।
कलौ भारतवर्षे च नान्यद्वर्षे कदाचन ।
शमादि-षोडश-भाण्डारं डाकिनी-सिद्धि-संयुतम् ।।276।।
चण्डिकादि दश-भाण्डारं काकिनी-सिद्धि-संयुतम् ।
शोभादि दश-भाण्डारं लाकिनी-सिद्धि-निर्णयम् ।।277।।
गदादि दश-भण्डारं काकिनी-सिद्धि-निर्णयम् ।
कल्याणीत्यादि कीर्त्यन्तं शाकिनी-सिद्धि-निर्णयम् ।।278।।
बद्धादि विलक्षणान्तं हाकिनी-सिद्धि-निर्णयम् ।
गुरुदेवं विना भद्रे निष्फलं श्रमः केवलम् ।।279।।
कलिकाले वरारोहे कलहं गुरु-शिष्ययोः ।
भविष्यति न सन्देहः प्रहारं गुरु-शिष्ययोः ।।280।।

(ऋषि के द्वारा शापित, छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख, वधिर, नेत्रहीन, कीलित, स्तम्भित, दग्ध, त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्छित, हृतवीर्य, हीन, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिंशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट, निरंस, सत्त्वहीन, केकर, बीजहीन, धूमित, आलिङ्गित, मोहित, क्षुधातुर, अतिदृप्त, अङ्गहीन, अतिक्रुद्ध, अतिक्रूर, सव्रीड़, शान्तमानस, स्थानभ्रष्ट, विकल, निःस्नेह, अतिवृद्ध, पीड़ित – (शारदातिलक - 2/64-74) – इस प्रकार कलिकाल के द्वारा जो 'दिव्य' रूप में सम्मत हैं – उन सभी का कथन किया गया ।।275।।

कलियुग में भारतवर्ष में – अन्य किसी वर्ष में नहीं, डाकिनी सिद्धि होती है एवं डाकिनी-सिद्धि होने पर, शमादि षोडश भण्डार का लाभ होता है ।।276।।

काकिनी-सिद्धि होने पर, चण्डिका प्रभृति दश भाण्डार की प्राप्ति होती है एवं लाकिनी-सिद्धि होने पर, शोभा प्रभृति दस-भण्डार प्राप्त होता है ।।277।।

राकिणी-सिद्धि होने पर, गदादि दश भण्डार का लाभ होता है एवं शाकिनी सिद्धि होने पर, कल्याणी से कीर्त्ति पर्यन्त प्राप्त होता है ।।278।।

हाकिनी-सिद्धि होने पर, बद्ध से विलक्षण पर्यन्त प्राप्ति होती है । हे भद्रे ! गुरुदेव के बिना साधक का परिश्रम केवल विफल हो जाता है ।।279।।

हे वरारोहे ! इस कलिकाल में गुरु एवं शिष्य के मध्य कलह होंगे, यहाँ तक कि मारपीट भी होंगे ।।280।।

इति ते कथितं सर्वं कालिकायाः सुदुर्लभम्।
कालिका भैरवो देवो जागर्त्ति हि सदा कलौ ॥281॥
तारा चैव महाविद्या तथा त्रिपुरसुन्दरी।
धनदा छिन्नमस्ता च मातङ्गी बगलामुखी ॥282॥
त्वरिता अन्नपूर्णा च तथा वाग्वादिनी प्रिये।
महिषघ्नी विशालाक्षी तारिणी भुवनेशिका ॥283॥
धूमावती भैरवी च तथा प्रत्यङ्गिरादका।
दुर्गा शाकम्भरी चैव कलिकाले हि निद्रिता ॥284॥
एतासां जपमात्रेण निद्राभङ्गेति जायते।
निद्राभङ्गे कृते देवि सिद्धि-हानिश्च जायते ॥285॥
किं तासां जपपूजायां हानिः स्यादुत्तरोत्तरम्।
ब्राह्मणे, क्षत्रिये, वैश्ये, शूद्रे विद्या प्रशस्यते ॥286॥
सत्यादि च चतुर्युगे सर्व-जातिषु कालिका।
प्रशस्ता कालिका विद्या अस्याश्च फलबोधिका ॥287॥

जो अतिदुर्लभ कालिका-मन्त्र की साधना है, उसके सम्बन्ध में समस्त तथ्य आपको बताया गया। कलिकाल में कालिका देवी एवं भैरवदेव सर्वदा जाग्रत हैं ॥281॥

महाविद्या तारा एवं त्रिपुरासुन्दरी, धनदा, छिन्नमस्ता एवं मातङ्गी तथा बगलामुखी – ॥282॥

त्वरिता अन्नपूर्णा एवं हे प्रिये वाग्वादिनि, महिषघ्नी विशालाक्षी, तारिणी भुवनेश्वरी ॥283॥

धूमावती एवं भैरवी तथा प्रत्यङ्गिरा प्रभृति, दुर्गा एवं शाकम्भरी ये सभी कलिकाल में निद्रिता हैं ॥284॥

इनका जप किये जाने पर ही (इनकी) निद्रा भंग होती है। हे देवि ! निद्रा भङ्ग होने पर सिद्धि की हानि होने की सम्भावना है ॥285॥

इनकी जप-पूजा किये जाने पर उत्तरोत्तर क्षति हो सकती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र – सभी के लिए ही मन्त्र-विद्या प्रशस्त है ॥286॥

सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग – इन चारों युगों में ही समस्त जातियों के लिए कालिका प्रशस्ता हैं एवं कालिकाविद्या भी सभी के लिए ही फलदायिका हैं ॥287॥

उपायांस्तत्र वक्ष्यामि येन सिद्धिः प्रजायते ।
सहस्रं डाकिनीमन्त्र निशायां प्रजपेत् यदि ।
बहुकाले तदा सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥288॥
स्त्रीशूद्राणां पुरश्चर्या नास्ति भद्रे कदाचन ।
जपपूजा सदैवासां प्रशस्ता वीरवन्दिते ॥289॥
चन्द्र सूर्योपरागे च शूद्राणां सिद्धिरुत्तमा ।
जायते सुभगे मातर्गुरु-भक्ति-र्भवेत् यदि ॥290॥
तदा सिद्धिमवाप्नोति गुरु-भक्त्या विशेषतः ॥291॥

इति दक्षिणाम्नाये श्रीकङ्कालमालिनीतन्त्रे
पञ्चमः पटलः समाप्तः ॥5॥

मैं उस उपाय को बताऊँगा, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो सकती है । निशाकाल में सहस्रसंख्यक डाकिनी मन्त्र को बहुत दिनों तक जप करने पर अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होती है । इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।288।।

हे भद्रे ! स्त्री एवं शूद्रों को कदापि पुरश्चरण नहीं करना चाहिए । हे वीरवन्दिते ! इनका सर्वदा जप एवं पूजा करना प्रशंसनीय है ।।289।।

चन्द्रग्रहणं एवं सूर्यग्रहण के समय मन्त्र-जप करने पर, शूद्रों को उत्तम सिद्धि की प्राप्ति होती है ।।290।।

हे सुभगे ! यदि गुरुभक्ति है, तो प्रबल गुरुभक्ति के द्वारा ही विशेष सिद्धि-प्राप्ति होती है ।।291।।

दक्षिणाम्नाय में श्रीकङ्कालमालिनी-तन्त्र में
पञ्चम पटल समाप्त ॥5॥

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. मन्त्र महोदधि (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 500/-
2. हिन्दी मन्त्र महार्णव (मूल एवं हिन्दी अनुवाद)
   मूल्य : देवी खण्ड 600/- मूल्य : देतवा खण्ड 550/- मूल्य : मिश्र खण्ड 250/-
3. कुलार्णव तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 300/-
4. सप्तशतीसर्वस्वम् (नानाविधिसप्तशतीरहस्यसंग्रहः)
   पण्डित सरयू प्रसादेन संगृहीतः — मूल्य : 150/-
5. शिवस्वरोदय (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) — मूल्य : 75/-
6. वामकेश्वरीमतम् (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) — मूल्य : 100/-
7. कौलज्ञाननिर्णय (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) — मूल्य : 200/-
8. डामर तंत्र (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) — मूल्य : 100/-
9. डामर तंत्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 75/-
10. मन्त्र रामायण (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 75/-
11. कुमारतंत्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 100/-
12. अद्भुत रामायण (महर्षि वाल्मीकि कृत) — मूल्य : 100/-
13. भूत डामर तंत्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 75/-
14. शाक्तानन्दतरङ्गिणी (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 200/-
15. गणेशसहस्रनाम स्त्रोत्रम् — मूल्य : 50/-
16. सामुद्रिक शास्त्रम् (मूल एवं भावार्थबोधिनी टीका सहित) — मूल्य : 50/-
17. श्यामारहस्यम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 250/-
18. श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् (मूलमात्र) तीन खण्डों में
   पूर्वार्द्ध मूल्य : 400/- उत्तरार्द्ध प्रथम मूल्य : 300/- उत्तरार्द्ध द्वितीय मूल्य : 300/-
19. श्री नीलतन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 150/-
20. मन्त्रयोग संहिता (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 100/-
21. भूत डामर महातन्त्रम् (पाताल खण्ड) मूलमात्र — मूल्य : 100/-
22. योनितन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 75/-
23. शिव स्वरोदय (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद) — मूल्य : 75/-
24. वृहत् तन्त्रसार (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) दो खण्डों में — प्रथम खण्ड मूल्य : 500/-
   द्वितीय खण्ड मूल्य : 600/-
25. बङ्कसेन संहिता (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 750/-
26. नारद पंचरात्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 400/-
27. श्री कृष्णयामल महातन्त्रम् (मूलमात्र) — मूल्य : 200/-
28. कुब्जिका तन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य 100/-
29. मुण्डमाला तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) — मूल्य : 200/-
30. Mantra Mahodhadhi (Text in Nagari Script & Text in Roman with English Translation) Price : Vol. I Rs. 1000/- Price : Vol. II 1000/-
31. Encyclopedia of Yoga — Rs. 500/-
32. Encyclopedia of Indian Erotices — Rs. 250/-
33. Dictionaries of Trantrasastra — Rs. 150/-

हमारे प्रमुख प्रकाशन

1. मन्त्र महोदधि (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 500/-
2. मन्त्रमहोदधि (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद) भाग-1 मूल्य 1000/- भाग-2 मूल्य 1000/-
3. हिन्दी मन्त्र महार्णव (मूल एवं हिन्दी अनुवाद)
   मूल्य : देवी खण्ड 600/-, मूल्य : देवता खण्ड 550/-, मूल्य : मिश्र खण्ड 250/-
4. श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् (मूलमात्र) पूर्वार्द्धम् 400/- उत्तरा0 प्रथम 300/- उत्तरा द्वितीय मूल्य 300/-
5. कुलार्णव तन्त्रम् (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद) मूल्य : 300/-
6. नारदपञ्चरात्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 400/-
7. श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् (मूलमात्र) मूल्य : 200/-
8. धनदारतिप्रिया तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 10/-
9. मन्त्रयोग संहिता (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 100/-
10. श्यामा रहस्यम् (मूल एवं [illegible]) मूल्य : 250/-
11. बृहत् तन्त्रसार (मूल एवं [illegible]) कृष्णानन्द आगम वागीश कृत
    भाग-1 मूल्य 500/- मूल्य : 600/-
12. सप्तशती सर्वस्वम् (नानाविधिसप्तशतीरहस्यसंग्रहः) मूल्य : 150/-
13. श्रीनील[illegible]म् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 150/-
14. भूतडामर [illegible]तन्त्रम् (पाताल खण्ड) मूलमात्र मूल्य : 100/-
15. शिवस्वर[illegible] (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद संहिता) मूल्य : 75/-
16. शाक्तानंद [illegible]णी (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 200/-
17. वामकेश्वरी[illegible] (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) मूल्य : 100/-
18. कौलज्ञाननि[illegible] (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) मूल्य : 200/-
19. डामर तन्त्र ([illegible] एवं अंग्रेजी अनुवाद) मूल्य : 100/-
20. डामर तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 75/-
21. मन्त्र रामायण (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 75/-
22. कामरत्नतन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 100/-
23. अद्भुत रामायण (महर्षि वाल्मीकि कृत) मूल्य : 100/-
24. बङ्गसेन संहिता (मूल एवं हिन्दी अनुवाद एवं परिशिष्ट सहित) मूल्य : 750/-
25. हारीत संहिता (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 300/-
26. भूतडामर तन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 75/-
27. योनितन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 75/-
28. कुब्जिका तन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 100/-
29. मुण्डमाला तन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : 200/-
30. Encyclopedia of Yoga Rs. 500/-
31. Encyclopedia of Indian Erotices Rs. 250/-
32. Dictionaries of Tantrasastra Rs. 150/-
33. गणेशसहस्रनाम स्तोत्रम् मूल्य : 50/-
34. सामुद्रिक शास्त्रम् (मूल एवं भावार्थबोधिनी टीका सहित) मूल्य : 50/-
35. त्रिपुरासार समुच्चय मूल्य : 10/-
36. आगम तत्वविलास (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) शीघ्र